रक्षा बंधन

[रक्षा बंधन तथा अन्य कहानियाँ]

लेखक—
श्री विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'

विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल रोड, आगरा।

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण
सितम्बर १९५९
मूल्य ३)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बाग मुजफ्फरखाँ, आगरा।

विषय-सूची

—:o:—

भक्त की टेर

(१)

कुछ लोग भक्ति में विभोर होकर कीर्तन करते हैं और कुछ लोगों ने इसे संध्या की बैठकबाजी तथा मनोरंजन का साधन बना रक्खा है। अधिक संख्या ऐसों की ही है। परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि, धार्मिक दृष्टि से, यह मनोरंजनों की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

रायसाहब कन्हैयालाल भी ऐसे लोगों में थे जिन्होंने कीर्त्तन को अपना मनोरंजन बना रक्खा है। उनके घर में कृष्ण-मन्दिर था। कृष्ण-मन्दिर में ही कीर्त्तन होता था। रायसाहब के कुछ परिचित तथा कुछ वेतन-भोगी लोग सन्ध्या को ७ बजे आ जाते थे और नौ बजे तक कीर्त्तन करते थे। चलते समय उन्हें एक एक दोना प्रसाद मिलता था। कुछ लोक तो केवल प्रसाद के लालच से ही आकर सम्मिलित हो जाते थे। मनोरंजन का मनोरंजन और प्रसाद घाते में। कभी-कभी पास-पड़ौस की कुछ महिलायें भी आ जाती थीं। जिस दिन महिलाओं का सहयोग प्राप्त हो जाता था उस दिन कीर्त्तन करने वाले अपना पूरा जोर लगा देते थे। कुछ लोगों के लिए महिलाओं की उपस्थिति स्फूर्ति-दायक होती है।

एक दिन कीर्त्तन करने वाले रायसाहब से बोले "कृष्णाष्टमी आ रही है।"

"हाँ ! खूब धूम से मनायेंगे।"

"इस बार कुछ नवीनता होनी चाहिए।"

"कैसी नवीनता ! झाँकी में नवीनता ?"

"झाँकी में तो कुछ न कुछ नवीनता हो ही जाती है। कीर्त्तन में कुछ नवीनता होनी चाहिए।"

"कीर्त्तन में क्या नवीनता हो सकती है—समझ में नहीं आता।"

"इस बार कोई कीर्त्तन करने वाली मण्डली बुलवाई जाय !—की मण्डली के बड़े नाम हैं, ऐसा कीर्त्तन करते हैं कि आनन्द आ जाता है।"

"तो क्या वह मण्डली बुलवाई जाय ?"

"मेरी तो यही सम्मति है।" ढोल बजाने वाला बोला। "उनके साथ ढोलक बजाने वाला है ! क्या ढोलक बजाता है—वाहवा ! कमाल करता है। जी चाहता है खाली ढोलक ही सुना करो।"

"उनके साथ सभी आदमी अच्छे हैं। बाजा बजाने वाला क्या मामूली है ?"

"वह भी बहुत बढ़िया है।"

रायसाहब बोले—"अच्छा कल उनको लिखेंगे, पूरा पता मालूम है ?"

"हाँ मालूम है। लेकिन चिट्ठी से काम न होगा। चिट्ठी आने-जाने में देर हो जाएगी और तब तक सम्भव है कोई दूसरा उसे हथिया ले। इसलिए किसी आदमी को भेज दीजिए। वह जाकर बयाना दे आवे।"

यह राय अन्य लोगों को भी पसन्द आई। राय साहब ने यह राय मान ली। दूसरे दिन एक व्यक्ति मण्डली ठीक करने के लिए भेज दिया गया।

पाँच दिन पश्चात् वह आदमी लौटा। रायसाहब ने पूछा—"कहो ठीक कर आये ?"

"ठीक क्या कर आया ! उनके तो बड़े मिजाज हैं। सौ रुपये रोज

और पूरी मण्डली का सेकेण्ड क्लास का किराया माँगते हैं।"

"फिर तुमने क्या किया ?"

"कुछ नहीं। मैं कह आया हूँ कि यदि हमारे रायसाहब को स्वीकार होगा तो आपको तार से इत्तला दी जायगी। हाँ तार से ही सेकेण्ड क्लास का किराया और सौ रुपये पेशगी भेजने पड़ेंगे।"

"कितने आदमी आयेंगे ?"

"पाँच आदमी ! एक बाजे वाला, ढोलकिया, और तीन कीर्त्तन करने वाले। हाँ उनके साथ एक नौकर भी होगा, उसका थर्ड क्लास का किराया देना होगा।"

"यदि छठी तक उन्हें रक्खा गया तो छः सौ तो वह हुए और दो सौ के लगभग रेलभाड़ा-इस प्रकार आठ सौ का खर्चा है।"

"जी हाँ।"

रायसाहब कुछ क्षण सोच कर बोले—"अच्छा बुला लिया जाय।"

"तो आज दो सौ रुपये तार से भेज देना चाहिए। सौ रुपये पेशगी और सौ रुपये रेल-भाड़ा।"

"अच्छी बात है आज रुपये भेज दिए जायँगे।"

राय साहब ने उसी दिन दो सौ रुपये तार द्वारा भेजवा दिए।

(२)

दूसरे दिन नगर भर में यह समाचार फैल गया कि रायसाहब के यहाँ—की विख्यात कीर्त्तन-मण्डली आ रही है।

रायसाहब के पारमर्शदाताओं ने यह समाचार रायसाहब को दिया।

"शहर भर में मण्डली आने की चर्चा है। भीड़ बहुत होगी।"

"भई हमारा तो प्राइवेट मामला है। हम बाहर वालों को न आने देंगे।" राय साहब बोले।

"यह तो कुछ अनुचित होगा राय साहब सोच लीजिए।"

"इसमें अनुचित क्या । हमारे यहाँ इतनी जगह ही नहीं कि बाहर की जनता समा सके ।"

"हाँ जगह तो नहीं है, परन्तु कुछ प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा ।"

"प्रबन्ध कैसा ?"

"कोई बड़ा स्थान——।"

"कीर्तन तो भगवान के सामने होगा । मैं भगवान को यहाँ से उठा कर कहीं अन्यत्र नहीं ले जा सकता । भगवान यहाँ प्रतिष्ठित हो चुके हैं अतः यहीं रहेंगे ।"

"समझ लीजिए ! भीड़ इकट्ठी अवश्य होगी ।"

"मैं दरवाजे पर बोर्ड लगवा दूँगा कि यह प्राइवेट कीर्त्तन है अनिमंत्रित लोग आने का कष्ट न उठावें । बल्कि स्थानीय समाचारपत्र में भी निकलवा दूँगा ।"

"हाँ यदि ऐसा कर दिया जाय तो सम्भव है भीड़ न हो ।"

"ऐसा तो करना ही पड़ेगा—अन्यथा मैं इतने लोगों को बिठाऊँगा कहाँ । मेरा मन्दिर कोई सार्वजनिक मन्दिर नहीं है—का मन्दिर सार्वजनिक है—वहाँ लोग जा सकते हैं ।"

"परन्तु वहाँ तो इस साल कदाचित कुछ न होगा ।"

"क्यों ?"

"उनके यहाँ कोई मृत्यु हो गई है चार-पाँच महीने हुए ।"

एक व्यक्ति बोल उठा—"ठाकुर जी के उत्सव से और मृत्यु से क्या सम्बन्ध ! क्या घरवालों के साथ ठाकुर जी भी शोक मनायेंगे ।"

"मनाना पड़ेगा । जब ठाकुर जी उनके घर में रहते हैं, उनका अन्न खाते हैं तब उन्हें उनके दुःख-सुख में भी भाग लेना पड़ेगा ।"

"यह ठीक रहा । जब घर वाले खुशी मनावें तब ठाकुर जी भी खुशी मनावें और जब घर वाले मातम करें तब ठाकुर जी भी मातम करें ।"

"क्यों भई जब घर वाले स्वर्गीय का स्मरण करके रोते होंगे । तब ठाकुर जी भी रोने लगते होंगे ?"

"घर वाले कम रोते होंगे, ठाकुर जी ज्यादा रोते होंगे ।"

राय साहब ने हँसकर पूछा—"क्यों ? ठाकुर जी ज्यादा क्यों रोयेंगे ।"

"यह सोचकर बहुत रोते होंगे कि अच्छी जगह आ फँसे । जहाँ घर वालों का मुँह देख कर हँसना-रोना पड़ता है ।"

"तो ठाकुर जी ऐसी जगह फँसते क्यों हैं ?"

"ठाकुर जी इतने सीधे हैं कि जो जहाँ पकड़ कर बिठा देता है वहीं धरे रहते हैं, फिर चाहे जितना रोना-झींकना पड़े परन्तु वहाँ से हिलने ही नहीं देते ।"

"अच्छा भाई होगा । ठाकुर जी का प्रसङ्ग लेकर मजाक उचित नहीं । हमें दुनियाँ से क्या मतलब हमें तो अपने काम से काम है । हम तो अख़बार में छपवा देंगे और द्वार पर बोर्ड भी लगा देंगे ।"

" जब जगह ही नहीं है तब तो यह करना ही पड़ेगा ।"

इसके तीसरे दिन स्थानीय समाचार पत्र में निकलाः—"सर्व साधारण की जानकारी के लिए सूचित किया जाता है कि राय साहब के यहाँ जन्माष्टमी पर जो कीर्त्तन होगा वह प्राइवेट रूप से होगा । उसमें केवल निमन्त्रित लोग ही सम्मिलित हो सकेंगे । अतः कृपा करके अनिमन्त्रित सज्जन पधारने का कष्ट न उठावें । अन्यथा स्थान संकोच के कारण उन्हें निराश होकर लौट जाना पड़ेगा ।"

इस समाचार के निकलने पर जनता में काफी टीका-टिप्पणी हुई । कुछ लोगों ने इस समाचार के औचित्य पर सन्तोष प्रकट किया, परन्तु अधिकांश को असन्तोष हुआ ।

(३)

जन्माष्टमी का दिन आ गया । रात के नौ बजे से ही रायसाहब के द्वार पर भीड़ जमा होने लगी । एक दोना प्रसाद और एक कुल्हिया पंचामृत पाने के लिए स्त्री-पुरुष की भीड़ जमा थी ।

भीड़ देख कर रायसाहब घबराये । एक मित्र से बोले—"आदमी बहुत जमा हो गया है ।"

"इनमें से अधिकांश तो केवल प्रसाद लेने के लिए खड़े हैं, प्रसाद लेकर चले जायेंगे।"

"परन्तु इतने आदमियों के लिए तो हमने प्रसाद का प्रबन्ध किया नहीं। और साल तो इतने आदमी नहीं आते थे।"

"इस वर्ष मण्डली आने के कारण आपका काफी विज्ञापन हो गया है इसलिए इतनी भीड़ जमा है। पहिले इतने आदमी नहीं जानते थे कि आप के यहाँ भी अष्टमी इतने धूम धाम से मनाई जाती है।"

"सबको प्रसाद नहीं मिलेगा तो बदनामी हो जायगी।"

"हाँ यह बात तो है।"

"तब क्या होना चाहिए।"

"जल्दी से प्रसाद बनवा लीजिए।"

"इतनी जल्दी प्रसाद कहाँ से बन सकता है। प्रसाद का सब सामान फल इत्यादि कच्चा दूध और दही यह इस समय कहाँ मिलेगा?"

"कच्चा दूध तो नहीं मिलेगा। सन्ध्या को मिल सकता था।"

"फल भी नहीं मिलेंगे।"

"हाँ है तो कठिन समस्या।"

"तब क्या हो। बादल तो छाये हैं परन्तु वर्षा होने के लक्षण नहीं हैं। यदि वर्षा होने लगे तो यह भीड़ हुर्र हो जाय!"

"खैर देखा जायगा, कीर्तन तो आरम्भ करवाइये।"

रायसाहब सोचने लगे कि मण्डली बुलवा कर खामखाह एक मुसीबत मोल ले ली।

कीर्तन आरम्भ हुआ; परन्तु रायसाहब को इस समय उसके प्रति कोई अनुराग नहीं था। उनका ध्यान अपनी बदनामी हो जाने के भय में लगा हुआ था। उन्हें ठाकुरजी पर भी रोष हो रहा था कि हमारी आबरू बचाने के लिए वर्षा भी नहीं करते, बैठे मुँह ताक रहे हैं। ठाकुरजी के सामने खड़े होकर मन ही मन बोले—"ऐसे में मूसलाधार बरसा दो—बैठे देख क्या रहे हो? भक्त की आबरू बचाने के लिए कुछ भी न करोगे?"

परन्तु ठाकुरजी तो रायसाहब की भक्ति से भली भाँति परिचित थे। अतः रायसाहब की प्रार्थना से उनके चेहरे पर शिकन भी न आई।

रायसाहब ने पुनः प्रार्थना की—"देखो तुम्हारे मनोरंजन के लिए हमने कितनी बढ़िया मण्डली बुलवाई है, इसका तो कुछ ख्याल करो।"

परन्तु ठाकुर जी की वही निर्निमेष दृष्टि तथा मुख पर मन्द मुस्कान।

कीर्त्तन चल रहा था। निमंत्रित श्रोतागण झूम-झूम कर कीर्त्तन में योग दे रहे थे। उन्हें क्या पता कि रायसाहब के हृदय पर क्या बीत रही है। रायसाहब दाँत किटकिटा कर अपने अन्तरंग आदमियों से कहते थे। कितने असभ्य तथा दरिद्री हैं लोग! मना कर देने पर आकर जमा हो गये—थोड़े से प्रसाद के लिए।

इस अवस्था में जन्म का समय आ गया। अभी तक द्वार बन्द था, जन्म हो जाने पर द्वार खुलने वाला था। पुजारी ने ठाकुरजी का जन्म करवाया! जन्म के समय रायसाहब के हृदय की धड़कन बढ़ गई—यह सोचकर कि अब द्वार खोलकर प्रसाद बाँटना होगा, देखो क्या बीतती है। कुछ भी हो ठाकुरजी ने इस समय अपने भक्त के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। वर्षा कर देते तो यह मुसीबत टल जाती।

सहसा द्वार खुलने के पहिले ही बूँदाबाँदी आरम्भ हो गई और जब द्वार खुलने का समय आया, तो मूसलाधार वर्षा आरम्भ हो गई।

रायसाहब प्रसन्न होकर बोले—"भक्त की टेर भगवान ने सुन ली—अब खोल दो द्वार!"

परन्तु जैसे ही द्वार खुला कि जनता की भीड़ मन्दिर में घुस आई; आदमी पर आदमी गिरने लगा। कुछ लोग कीर्तन करने वालों पर गिरे—कीर्तन वाले बाजा और ढोलक उठाकर भागे।

रायसाहब तथा उनके कर्मचारी भीड़ को रोकने की चेष्टा कर रहे थे परन्तु पानी से बचने के लिए लोग पिले पड़ते थे।

सहसा बिजली फेल हो गई और अन्धेरागुप हो गया।

× × × ×

जब आध घन्टे पश्चात् पुनः बिजली आई तो वर्षा बन्द हो चुकी थी। बाहरी आदमी सब चले गये थे। रायसाहब की एक आँख सूझ आई थी, उनके एक कर्मचारी के आगे के दाँत टूट गये थे तथा अन्यों के भी हल्की चोटें पहुँची थीं।

रायसाहब ठाकुरजी की ओर देखकर बोले—"वाह महाराज आबरू तो बचा दी; परन्तु इतनी दुर्दशा करवा कर द्वार खुलने के आध घन्टे पहले वृष्टि करवा देते–इतनी भी अक्ल न आई।"

रायसाहब का एक कर्मचारी बोला—"रायसाहब थोड़ी गलती हम लोगों ने भी की। वर्षा आरम्भ होते ही द्वार खोल दिया, यदि दस-पन्द्रह मिनट ठहर जाते तो भीड़ सब भाग जाती। द्वार खुल जाने से वह सब यहीं पिल पड़ी।"

रायसाहब ने मन में कहा—"हाँ, यह भूल तो अवश्य हो गई।" यह सोचकर उन्होंने ठाकुरजी की ओर देखा। उधर वही निर्निमेष दृष्टि तथा मन्द मुस्कान थी।

पत्रकार

(१)

दोपहर का समय था। 'लाउड स्पीकर' नामक अँग्रेजी दैनिक समाचार पत्र के दफ्तर में काफी चहल-पहल थी। यह एक प्रमुख तथा लोकप्रिय पत्र था।

प्रधान सम्पादक अपने कमरे में मेज के सामने विराजमान थे। इनकी वयस पचास के लगभग थी।

इनके सम्मुख दो सहकारी सम्पादक उपस्थित थे। तीनों व्यक्ति मौन बैठे थे—मानो किसी एक ही बात पर तीनों विचार कर रहे थे। सहसा प्रधान सम्पादक बोल उठे—"रुपये का कोई विचार नहीं। रुपया चाहे जितना खर्च हो जाय; परन्तु केस का विवरण सब से पहले हमारे पत्र में प्रकाशित होना चाहिए।"

"यह बात सर्वथा रिपोर्टर के कौशल पर निर्भर है।"

"निस्सन्देह ! यदि रिपोर्टर कुशल न हुआ तो रुपया खर्च करके भी कोई लाभ न होगा।" दूसरा सम्पादक बोला।

"खैर यह मानी हुई बात है कि बिना अच्छा रिपोर्टर हुए काम नहीं हो सकता। अपने यहाँ का कौन सा रिपोर्टर इस कार्य के योग्य है।"

"मेरे ख्याल से तो मि० सिनहा इस कार्य को कर लेंगे ।"

"मेरा भी ख्याल ऐसा ही है।"

"मैंने मि० सिनहा को बुलाया तो है।"

"अभी तो वह आये नहीं हैं।"

"मैंने कह दिया है कि जिस समय आवें मेरे पास भेज देना।"

यह कहकर सम्पादक ने घन्टी बजाई।

तुरन्त एक चपरासी अन्दर आया सम्पादक ने उससे कहा—"मि० सिनहा आये हैं ? देखो तो !"

चपरासी चला गया। कुछ क्षण पश्चात् आकर बोला—"अभी तो नहीं आये।"

"आते होंगे !" कहकर सम्पादक महोदय पुनः सहकारियों से बात करने लगे। कुछ देर पश्चात् एक व्यक्ति सम्पादक के कमरे में प्रविष्ट हुआ। यह व्यक्ति यथेष्ट हृष्ट-पुष्ट था। वयस २५, २६ के लगभग गौर-वर्ण, क्लीनशेव्ड, देखने में सुन्दर जवान था। उसे देखते ही सम्पादक महोदय ने कहा—"आइये मि० सिनहा ! मैं आपकी प्रतीक्षा ही कर रहा था।" मि० सिनहा मुस्कराते हुए एक कुर्सी पर बैठ गये और बोले—"कहिये, क्या आज्ञा है ?"

"भाई बात यह है कि 'कला भवन' का उद्घाटन हो रहा है। उसमें महाराज की स्पीच होगी। वह स्पीच सबसे पहले हमारे पत्र में प्रकाशित होनी चाहिए।"

मि० सिनहा ने कहा—"सो तो होना ही चाहिए।"

"परन्तु इस कार्य को करेगा कौन ? आप कर सकेंगे ?"

मि० सिनहा विचार में पड़ गये। सम्पादक महोदय बोले—"खर्च की चिन्ता मत कीजिएगा।"

मि० सिनहा बोले- "प्रयत्न करूंगा। सफलता का वादा नहीं करता।"

"सफलता का वादा तो कोई नहीं कर सकता। परन्तु अच्छे से अच्छा प्रयत्न करने का वादा किया जा सकता है।"

"वह मैं निश्चय ही करूँगा।" अभी काफी समय है।

"हाँ दस दिन हैं।"

तो यदि मुझे आज से ही इस कार्य के लिए मुक्त कर दिया जाय तो अधिक अच्छा रहेगा।"

"हाँ! हाँ! आज से आप मुक्त हैं और जितना रुपया उचित समझें ले लें।"

"अच्छी बात है। मैं आज रात को ही प्रस्थान करूँगा। रात में कोई ट्रेन जाती है?"

"हाँ, जाती है।"

"तो बस उसी से प्रस्थान करूँगा।"

(२)

मि० सिनहा एक होटल में ठहरे हुए थे। रात को ८ बजे के लगभग मि० सिनहा सूटेड-बूटेड होकर निकले। बाहर आकर उन्होंने एक ताँगा लिया और सीधे कला भवन की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष के यहाँ पहुँचे।

यह महाशय एक क्षत्रिय थे। सुशिक्षित कला-पारखी, धनाढ्य! मि० सिनहा को उन्होंने बड़ी आवभगत से लिया। कुछ देर बैठने के पश्चात् वर्मा जी बोले—"तो आप उद्घाटन समारोह देखने आये हैं।"

"जी! महाराज तो कदाचित एक दिन पूर्व आ जायँगे।"

"जी हाँ, महाराज शनिश्चर की शाम को आ जाँयगे—इतवार को उद्घाटन है।"

"देखने योग्य समारोह होगा।"

"जी हाँ! हम लोग प्रयत्न तो ऐसा ही कर रहे हैं।"

"उस अवसर पर महाराज का भाषण भी होगा।"

"जी हाँ! अवश्य होगा।"

"महाराज बोलते तो अच्छा हैं।"

"हाँ! अधिकतर उनकी स्पीच पहले से तैयार कर ली जाती है। ऐसा सुना है।"

"इस अवसर के लिए तो महाराज की स्पीच तैयार होगई होगी।"

"अवश्य हो गई होगी।"

"छपवा ली गई है क्या ?"

"यह नहीं कहा जा सकता। महाराज अपने साथ ही लायंगे।"

"हूँ ! खैर जो भी हो, समारोह शान का होगा।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं।"

इसी समय एक अष्टादश वर्षीय युवती जिसकी वेश-भूषा अप-टू-डेट थी कमरे में प्रविष्ट हुई। वह आकर वर्मा जी के निकट बैठ गई। वर्मा जी बोले—"यह मेरी कन्या सुनन्दा है। इसने इस वर्ष बी० ए० में प्रवेश किया है।"

सुनन्दा गेहुँए रंग की लड़की थी। नखशिख भी साधारण था। उसके हाव भाव में कुछ पुरुषत्व था।

वर्माजी के यहाँ दो दिन जाने पर मि० सिनहा को ज्ञात हुआ कि सुनन्दा उनकी ओर अधिक आकर्षित होती है। यह ज्ञात होने पर मि० सिनहा मन ही मन मुस्कराये। सुनन्दा की ओर उनका आकर्षण बिल्कुल नहीं था प्रत्युत वह उससे अलग-अलग रहने की चेष्टा करते थे।

सहसा मि० सिनहा को कुछ ध्यान आया। उस ध्यान के आते ही उन्होंने सुनन्दा के प्रति अपना व्यवहार बदल दिया। अब वह उससे खूब घुल-घुलकर वार्त्तालाप करने लगे। उसके साथ घूमने-फिरने भी जाने लगे। तीन चार दिन में ही उन्होंने सुनन्दा से यथेष्ट घनिष्टता उत्पन्न कर ली।

अब उद्घाटन समारोह के केवल दो दिन रह गये थे।

संध्या समय मि० सिनहा बैठे सुनन्दा से वार्तालाप कर रहे थे। इसी समय वह बोले—"महाराज कल आ रहे हैं!"

"हाँ, कल आ जाँयगे—ऐसा समाचार है।"

सुनन्दा ने कहा।

"ठहरेंगे तो यहीं।"

"हाँ! उनके ठहरने के लिए सब प्रबन्ध कर लिया गया है।"

"महाराज उद्‌घाटन समारोह पर व्याख्यान भी देंगे। ऐसा सुना है।"

"व्याख्यान तो अवश्य देंगे।"

"यह भी सुना है कि वह अपनी स्पीच छपवाकर ला रहे हैं।"

"शायद, मुझे ठीक मालूम नहीं।"

"उनकी स्पीच की एक छपी प्रति मिल जाती तो बड़ा अच्छा था।"

"सो तो सबको बाँटी जायगी।"

"वह तो समारोह के दिन बाँटी जायगी। मैं एक दिन पहले चाहता हूँ।"

"अच्छा। क्यों?"

"एक बेवकूफी कर बैठा हूँ।"

"वह क्या?"

"एक मित्र से शर्त बद ली है कि मैं महाराज की स्पीच एक दिन पहले प्राप्त कर लूँगा।"

"ऐसी शर्त क्यों बदी?"

"बात ही बात में ऐसा हो गया।"

"पूरी हो जायगी?"

"यह तो मैं स्वयं पूछने वाला था।"

"मुझसे!"

"हाँ!"

"मुझे स्पीच से क्या मतलब?"

"परन्तु मुझे तो है और तुम्हें मुझसे है और तुम्हारे यहाँ ही महाराज ठहरेंगे।"

यह कहकर मि० सिनहा ने सुनन्दा के कन्धे पर हाथ रख दिया। सुनन्दा मुस्कराकर बोली—"यह बात है।"

"तुम चाहोगी तो मिल जायगी।"

"देखो, प्रयत्न करूँगी।"

"प्रयत्न करोगी तो अवश्य मिल जायगी।"

"ठीक नहीं कह सकती।"

"मैं कह सकता हूँ तुम्हारे लिए यह कार्य बड़ा सरल है।"

मि० सिनहा की बात सुनकर सुनन्दा विचार में पड़ गई।

(३)

महाराज आ गये। जिस कोठी में महाराज ठहरे थे वह कोठी मि० वर्मा की ही थी—और उनकी अपने रहने की कोठी से मिली हुई थी। कोठी के चारों ओर हथियार बन्द पुलिस का पहरा था।

सुनन्दा अपने पिता के साथ महाराज से मिली। महाराज उससे वार्तालाप करके बड़े प्रसन्न हुए।

बातचीत के प्रसंग में वर्मा जी ने महाराज से पूछा—"अपनी स्पीच तो श्रीमान् छपवाकर लाये होंगे।

"हाँ! छपवा कर लाया हूँ।"

सुनन्दा बोली—"मैंने सुना है महाराज बड़ी सुन्दर अँग्रेजी बोलते हैं। स्पीच बड़ी अच्छी होगी।"

"महाराज हंस पड़े। उन्होंने पूछा—"क्या तुमने पहले कभी मेरी स्पीच नहीं पढ़ी?"

"नहीं श्रीमान्, मुझे अभी तक ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।"

"अच्छा! पढ़ोगी?"

"निस्सन्देह अभी मिल जाय तो रात में विस्तर पर लेटकर पढ़ने में आनन्द आता है।"

महाराज हँस पड़े। उन्होंने कहा—"अच्छा! अभी देता हूँ।"

यह कहकर महाराज ने स्पीच की प्रतियों का बण्डल निकलवाया और उसमें से एक प्रति निकाल कर सुनन्दा को दी।"

वर्मा जी बोल उठे—"किसी दूसरे के हाथ में न पड़ने पाए! जब तक स्पीच उद्घाटन के अवसर पर पढ़ न दी जाय तब तक किसी दूसरे के हाथ में न पड़नी चाहिए।"

सुनन्दा—"मैं इसका पूरा ध्यान रक्खूँगी।"

"पढ़के मुझे लौटा देना।" वर्मा जी ने कहा।

"अच्छा, लौटा दूँगी।"

सुनन्दा भाषण लेकर अपनी कोठी में आई। उसने आते ही मि० सिनहा को फोन किया।

मि० सिनहा के आने तक सुनन्दा ने भाषण स्वयं पढ़ डाला। पन्द्रह मिनट पश्चात् नौकर ने मि० सिनहा के आने की सूचना दी।"

सुनन्दा मि० सिनहा के पास मुँह लटकाये हुए पहुँची और बोली, "भाषण तो नहीं मिल सका।"

मि० सिनहा का मुख मलिन हो गया, वह बोले—"यह तो बड़ा गड़बड़ हुआ।"

सहसा सुनन्दा खिलखिला कर हँस पड़ी और उसने भाषण की प्रति दिखाकर कहा—"यह है भाषण।"

मि० सिनहा का मुख खिल उठा। उन्होंने उत्सुकता पूर्वक हाथ बढ़ा कर भाषण लेना चाहा। सुनन्दा हाथ पीछे हटाकर बोली—"पहले इनाम तो दिलवाओ।"

"इनाम! भाषण तो तुम्हारे हाथ में है और इनाम मुझसे माँग रही हो। मेरे हाथ में देकर इनाम माँगो।"

"दोगे?"

"अवश्य!"

सुनन्दा ने भाषण दे दिया। मि० सिनहा ने उसे खोलकर देखा। सुनन्दा ने पूछा—"है वही धोखा तो नहीं है?"

"नहीं। धोखा नहीं है।"

"अब इनाम मिलना चाहिए।"

"हाँ! हाँ! यह लो इनाम!"

यह कहकर मि० सिनहा ने सुनन्दा को घसीट कर अपने अङ्क में ले लिया।

× × ×

महाराज की स्पीच सबसे पहले "लाउड स्पीकर" में प्रकाशित हुई। जिस दिन उद्घाटन समारोह होने वाला था उसी दिन प्रातःकाल

'लाउड स्पीकर' में महाराज का सम्पूर्ण भाषण प्रकाशित हो गया।

प्रधान सम्पादक ने मि० सिनहा की बड़ी प्रशंसा की उन्होंने पूछा--"परन्तु भाषण तुम्हें कैसे मिल गया ?"

मि० सिनहा ने कुछ खेल के साथ कहा--"क्या बताऊँ ! इस समय एक प्रेमकान्त युवती अपने उस प्रेमी की प्रतीक्षा में होगी जो एक धनाढ्य परिवार का सुशिक्षित लड़का था, जो उद्घाटन समारोह देखने आया था और जिसने उस युवती से विवाह करने का वादा किया था। जिसके लिए उसने न जाने किस युक्ति से भाषण की प्रति प्राप्त की थी और जो भाषण की प्रति लेकर केवल प्रथम बार युवती का आलिंगन—चुम्बन करके चला गया और फिर अभी तक लौटकर नहीं आया-कदाचित कभी न आयेगा।"

यह कहकर मि० सिनहा ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी।

सम्पादक महोदय बोले—"बड़े हृदयहीन हो, एक भोली भाली लड़की को धोखा देकर चले आये।"

"मैं हृदयहीन तो नहीं हूँ। मैं हूँ एक पत्रकार ! और एक पत्रकार को बहुधा हृदयहीन बनना ही पड़ता है।"

"ठीक कहते हो !" सम्पादक ने मुँह बनाकर सिर हिलाते हुए गम्भीरतापूर्वक कहा।

प्रतिहिंसा

(१)

फ्रांस के पेरिस नगर के एक विशाल भवन में जर्मन सेना की एक टुकड़ी का निवास था। पेरिस नगर की जर्मन सेना का कमाण्डर भी इसी भवन में डेरा डाले हुए था। दोपहर का समय था। कमाण्डर अपने दफ्तर में बैठा कुछ कागज पत्र देख रहा था कि इसी समय चार सैनिकों सहित एक सार्जेण्ट कमाण्डर के सामने उपस्थित हुआ। सार्जेंट ने "हाइल हिटलर" कहकर कमान्डर का अभिवादन किया। कमान्डर ने प्रत्युत्तर देकर पूछा—"क्या है?"

"एक फ्रांसीसी लड़का मिला है जो हमारे लिए जासूसी करने को तैयार है।"

"खूब ! उसे हाजिर करो।"

सार्जेन्ट चला गया और कुछ क्षण पश्चात् एक लड़के को साथ लेकर वापस आया। यह लड़का १७-१८ वर्ष का था और बड़ा रूपवान था। कमाण्डर ने उसे कुछ क्षण तक ध्यानपूर्वक देखकर उससे पूछा—"तुम्हारा नाम?"

"लुई।" लड़के ने उत्तर दिया।

"और बाप का नाम?"

"दिसाले।"

"कहाँ रहते हो ?"
लड़के ने मोहल्ले का नाम बताया।
"तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं।"
"मेरा बाप, मेरी मां, एक बड़ा भाई।"
"बड़े भाई की क्या उम्र है।"
"पच्चीस वर्ष !"
"तुम्हारा बाप क्या करता है ?"
"एक काबरे में नौकर है।"
"और भाई ?"
"होटल में।"
"काबरे और होटल का नाम ?"
लड़के ने बताया।
"तुम हमारा काम करोगे ?"
"हाँ—आँ ?"
"तुमको फिलहाल दस फ्रांक रोज मिलेंगे। अच्छा काम करोगे तो बढ़ा दिये जायँगे।"
"बहुत अच्छा।"
"देखो घर में तुम्हारे माँ-बाप और भाई जो बातें करें वह नित्य हमको आकर बता जाया करो और लोग भी अर्थात् तुम्हारे पड़ोसी अथवा जहाँ तुम जाओ वे लोग जो बातें करें वह भी बता जाया करो, यह काम कर सकोगे ?"
"बड़ी सरलता से !"
"यहाँ किस समय आया करोगे ?"
"इसी समय।"
"ठीक है ! सार्जेण्ट।"
"हुजूर !"
"इसे इधर ले जाकर रजिस्टर्ड करवा दो।"
"बहुत खूब !"

"सार्जेण्ट लड़के को दूसरे कमरे में ले गया। वहाँ लड़के का नाम, मुहल्ला इत्यादि सब लिख लिया गया और उसके अँगूठे का निशान तथा फोटो लिया गया। इसके पश्चात उससे कहा गया—तुम्हारा नम्बर १४०५ है! समझे? यहाँ आकर अथवा किसी जर्मन अफसर के पूछने पर यही नम्बर बताना—नाम किसी को मत बताना। बहुत होशियारी से रहना। किसी को यह पता न लगे कि तुम हमारे लिए काम कर रहे हो।"

"बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।" लुई ने कहा।

"अच्छा तो तुम अब जा सकते हो। कल इसी समय आकर अपनी रिपोर्ट देना।"

"बहुत अच्छा।"

यह कहकर लुई विदा हुआ।

लुई जर्मन कमाण्डर के निवासस्थान से निकल कर सीधा अपने घर पहुँचा। उसके पीछे-पीछे एक जर्मन गुप्त रूप से लगा हुआ था। जब लुई अपने मकान के अन्दर चला गया तो गुप्तचर वापस लौट गया। लुई का पिता तथा उसकी माता बैठे बात कर रहे थे। लुई को देखकर उसके पिता ने पूछा—"क्या हुआ?"

"ठहरिये पिताजी, पहले मैं कपड़े बदल आऊँ!"

यह कहकर लुई एक छोटे से कमरे में घुस गया। कुछ क्षण पश्चात् जब वह बाहर निकला तो लड़का न होकर लड़की था। केवल सिर के बालों को छोड़कर जो पुरुषों जैसे थे, अन्य सब प्रकार से वह लड़की थी।

उसकी माता बोल उठी—"विग (नकली बाल) पहन लो बेटी।"

"ओ भूल गई!"

यह कहकर वह पुनः कमरे में चली गई और दूसरे ही क्षण बाहर निकल आई अब उसके बाल जनाने थे। माता के बगल में कुर्सी पर बैठते हुए वह बोली—"ओफ! अब जान में जान आई! मैं तो बहुत डर रही थी कि कहीं जर्मन मुझे पहचान न लें कि यह लड़की है। जान

जोखिम का काम था ; यदि पहचान लेते तो मैं जीवित न लौट सकती।"

"मैं तुम्हारे साहस की दाद देता हूँ लुइसी ! हुआ क्या यह बताओ !"

"सब ठीक हो गया ! मैं प्रविष्ट कर ली गई। ये जर्मन बड़े सतर्क हैं पिताजी। मेरा नाम-धाम इत्यादि लिखने के साथ ही उन्होंने मेरा फोटो तथा अँगूठे का निशान भी ले लिया।"

"सो तो करेंगे ही। इतने सतर्क न रहें तो यहाँ रहने पावें।" चलो सब ठीक हो गया। इन जर्मन कुत्तों से बदला लेने की सुविधा प्राप्त हो गई। अब हम लोगों को अपना काम करने की तैयारी करनी चाहिए। तुमने सब बातें ठीक-ठीक बता दी थीं।"

"अपना नाम छोड़कर सब बातें ठीक ही बताईं।"

"ठीक ! यदि जर्मन तहकीकात करें तो उन्हें कोई बात गलत न मिले।"

"परन्तु मैंने अपना नाम तो ग़लत ही बताया है।"

"कोई हर्ज नहीं ! पास पड़ौस वालों को तो कह ही दिया गया है कि यदि कोई पूछे तो लड़का बताना और नाम लुई बताना।"

"यदि होटल तथा काबरे में जाकर पूछा तो ?" लुइसी ने प्रश्न किया।

"उनको क्या पता कि मेरे घर में कौन-कौन है। न मैंने और न तेरे भाई ने वहाँ किसी से कभी बताया। वहाँ तो केवल मेरा नाम तथा पता दर्ज है। ऐसा तेरे भाई का भी है।"

"तब तो कोई खटका नहीं।"

"मेरा नम्बर १४०५ रक्खा गया है।"

"गुप्तचरों के नम्बर ही होते हैं। उनके नाम अफसरों के अतिरिक्त और किसी को ज्ञात नहीं होते। एक बात का ध्यान रखना लुइसी तुम जब घर से जाना तो मर्दाने-भेष में ही जाना। ये जर्मन बड़े सयाने हैं। सम्भव है उन्होंने हमारे मकान पर कोई गुप्तचर तैनात किया हो। यदि वह तुम्हें जनाने-भेष में देखेगा तो वह इसकी रिपोर्ट देगा और ऐसा होने से जर्मनों को सन्देह उत्पन्न हो जायगा।"

"ठीक है, मैं सदैव इसका खयाल रक्खूँगी।"

(२)

लुइसी नित्य जर्मन कमाण्डर के दफ्तर में जाकर अपनी रिपोर्ट लिखाने लगी। दो तीन दिन तो उसने साधारण बातें बताईं। चौथे दिन उसने रिपोर्ट दी—"कल चार पाँच आदमी मेरे पिता के पास आये थे। एक बन्द कमरे में वह एक घण्टे तक मेरे पिता से बातें करते रहे।"

उससे प्रश्न किया गया—"तुम वे बातें नहीं सुन सके?

"कैसे सुन सकता था, कमरा अन्दर से बन्द था।"

"सुनने का प्रयत्न करो। यही तो खास बात है।"

"मैं अवश्य सुन लूँगी।"

"शाबाश! तुमको बहुत इनाम मिलेगा।"

सातवें दिन लुइसी ने रिपोर्ट दी—" आज मेरे पिता के पास आठ-दस आदमी आये थे। पिता ने हम लोगों को बता दिया था कि आज कुछ लोग आवेंगे, उनके लिए चाय तैयार रखना। यह समाचार पाकर मैं उस कमर में जिसमें वे लोग बैठने वाले थे पहले से ही छिप गया।"

"ठीक! तुम्हें छिपते किसी ने देखा तो नहीं था।"

"नहीं मैं बाहर जाने का बहाना करके पहले घर से बाहर आगया था फिर अवसर पाकर चुपचाप कमरे में जा छिपा था।"

"शाबाश! क्या बातें हुई थीं?"

"वे सब बातें तो मुझे याद नहीं रहीं, उनका तात्पर्य आप लोगों के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचने का है। कल फिर मीटिंग है।"

"तो कल भी सुनना और इस बार कागज पेन्सिल साथ रखना। वे लोग जो बातें करें उनके खास-खास स्थल नोट कर लेना।"

"लेकिन जहाँ मैं छिपता हूँ वहाँ बड़ा अन्धेरा रहता है कुछ दिखाई नहीं देता।"

"अच्छा! इसका हम उपाय कर देंगे।"

यह कहकर अफसर ने जर्मन भाषा में एक अर्दली से कुछ कहा।

थोड़ी देर में वह एक पेंसिल लेकर आ गया। यह पेन्सिल निकल की बनी हुई थी। मामूली पेन्सिल से कुछ मोटी थी। अफसर बोला—"देखो यह पेन्सिल है। इसमें यह जो बल्ब लगा है इसे दबाने से इसमें रोशनी हो जायगी। यह रोशनी केवल कागज पर पड़ेगी—इधर उधर नहीं फैलेगी। इससे तुम अन्धेरे में भी लिख सकोगे। इसे अपने पास रक्खो। एक छोटी पाकेट बुक भी चाहिए या तुम्हारे पास है ?"

"हो तो दिलवा दीजिए।"

आफिसर ने पाकेट बुक भी दिलवा दी।

तीसरे दिन लुइसी पाकेट—बुक लेकर पहुंची और उसे जर्मन अफसर के सामने पेश किया। जर्मन अफसर उसे पढ़कर बोला—तो यह कहो, यह हम लोगों के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं। परसों एक बृहद् मीटिंग है। स्थान—क्या लिखा है ?"

लुइसी ने बताया।

"यह जगह कहाँ है ?"

"यह जगह नगर के एक सुनसान स्थान में है। यहाँ एक पुराना मकान है जो खाली पड़ा रहता है।" इसमें होगी। यह कहकर लुइसी ने मकान का पूरा पता बता दिया। "हूँ ! पचास-साठ आदमी होंगे। समय रात को नौ बजे के बाद ! हूँ ! ठीक है। शाबाश तुमने बहुत बड़ा काम किया। तुम्हें इसका भर पूर इनाम मिलेगा। अच्छा अब तुम जा सकते हो। कोई नई बात हो तो ध्यान रखना।"

× × ×

लुइसी के बताये दिन, रात के नौ बजे लगभग पचास जर्मन सैनिकों की एक टुकड़ी अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर उपर्युक्त मकान घेरने के लिए चल पड़ी। घूमते घामते दस बजे रात के लगभग ये लोग उक्त मकान के निकट पहुँचे। मकान का द्वार अन्दर से बन्द था। परन्तु मकान के अन्दर प्रकाश होने से यह पता लग रहा था कि अन्दर लोग मौजूद हैं। एक सैनिक ने खिड़की के पास कान लगाकर सुना—कुछ लोगों के बोलने का धीमा-स्वर सुनाई पड़ रहा था।

सैनिकों ने सलाह दी कि द्वार तोड़कर एकदम भीतर घुस चलना चाहिए। चार-पांच सैनिकों ने कंधे जोड़कर एकदम द्वार पर आघात किया। द्वार का पल्ला टूटकर अलग हो गया। सब सैनिक एक दम धावे के साथ मकान के अन्दर घुस गये। मकान के अन्दर एक बड़ा कमरा था इस कमरे के बीचो-बीच मेज पर एक 'आटोमेटिक रिपीटर ग्रामोफौन' (जो अपने आपही एक रिकार्ड को बार-बार बजाता रहता है) रक्खा हुआ था। इसी ग्रामोफोन से आदमियों के बोलने की आवाज निकल रही थी। इसके अतिरिक्त और वहां आदमी का नाम भी नहीं था। जर्मन सैनिक बड़े चक्कर में पड़े और यह सोच ही रहे थे कि क्या मामला है कि उसी समय एक गगन-भेदी धड़ाका हुआ और वह मकान तथा उसके साथ सब जर्मन सैनिक आकाश में उड़ गये।

इस दुर्घटना के आध घण्टे बाद ही जर्मन सैनिकों की एक टुकड़ी ने लुइसी का मकान घेर लिया, परन्तु अन्दर जाने पर उन्हें मकान बिलकुल खाली मिला।

सहचर

(१)

ठाकुर कामतासिंह एक जमींदार हैं। लगभग पाँच सहस्र रुपये वार्षिक के मालगुजार हैं। कुछ गाँव सोलहो आने हैं और कुछ में हिस्से हैं।

कामतासिंह उन अधिकांश जमींदारों में से हैं जिनके कारण जमींदारी पेशा बदनाम है। बल्कि यदि देखा जाय तो वह अन्य जमींदारों से दो-चार क़दम आगे ही बढ़े हुए हैं।

जैसा कि नियम है ऐसे जमींदारों के शत्रु भी उत्पन्न हो जाते हैं। उनके द्वारा पीड़ित लोगों को अन्य जमींदार अथवा ग्रामीण भड़काया करते है। ऐसों में प्राय: ऐसे लोग भी होते हैं जिनका कोई निजी स्वार्थ होता हैं—अर्थात ऐसे छोटे अथवा दुर्बल जमींदार, जिनका प्रभाव उक्त जमींदार के सामने नगण्य होता है। स्वयं उनकी प्रजा भी उक्त जमींदार के सामने उनका कोई महत्व नहीं समझती। अथवा वे लोग जो स्वयं उक्त जमींदार से पीड़ित होते हैं, और स्वयं अलग रहकर किसी दूसरे के द्वारा अपनी प्रतिशोधाग्नि को शान्त करना चाहते हैं।

संध्या का समय था। कामतासिंह अपने बड़े तथा पक्के भवन के सामने के प्रांगण में बैठे हुए थे। प्रांगण में तीन तख्त बिछे हुए थे, इनमें से एक पर गद्दी तकिया लगा हुआ था—इस पर कामतासिंह विराजमान

थे। दो तख्त आने-जाने वालों के लिए बिछे हुए थे। इनके अतिरिक्त कुछ मोढ़े तथा लकड़ी और लोहे की कुर्सियाँ भी रक्खी हुई थीं।

कामतासिंह के पास कई आदमी बैठे हुए थे कुछ मोढ़ों और कुर्सियों पर तथा कुछ तख्त पर। ठाकुर साहब के बगल में उन्हीं के तख्त पर एक शिकारी कुत्ता अपने अगले पैर फैलाये तथा उन पर मुँह रक्खे चुपचाप बैठा था। ठाकुर साहब अपना बायाँ हाथ उस पर फेर रहे थे।

ठाकुर साहब की वयस ४० वर्ष के लगभग थी। हृष्ट-पुष्ट, दीर्घकाय तथा बलवान व्यक्ति जान पड़ते थे। मुख पर कर्कशता, आँखें कुछ उबली हुई तथा आरक्त! एक अधेड़ सज्जन कह रहे थे—"आप कहीं जाया करें। तो हाथी पर जाया करें।"

"सो तो हम जाते ही हैं, परन्तु सच्ची बात तो यह है कि जब तक उसकी मरजी न होगी कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।"

"यह तो पक्की बात है ठाकुर!" दो-तीन व्यक्ति बोल उठे।

अधेड़ सज्जन बोले—"यह तो हई है, इसमें कोई क्या कह सकता है; परन्तु उपाय करना भी आवश्यक है।"

"सो क्यों नहीं! उपाय न करे और भगवान को दोष दे—वही कहावत है कि 'चलनी में दूध दुहै और करम को दोष दे।"

"सो उपाय तो हम रखते हैं। यदि कहीं हम अकेले भी पड़ जाँय और यह शिकार हमारे साथ हो तो दस-बारह लठैत हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

"यह बात तो है ठाकुर! यह शिकारी बड़ा होशियार है। कुत्ते सभी होशियार होते हैं, पर यह शिकारी बड़ा बेढब है। कोई आपकी तरफ जरा घूर कर भी देखता है तो यह चौकन्ना हो जाता है।

"उस दिन एक आसामी आया, वह हमसे बात करते-करते जरा जोर से बोलने लगा—सो बस इसने त्योरी बदली। इसके त्योरी बदलते ही आसामी का बोल बन्द हो गया-फिर वह जोर से नहीं बोला।"

"आप इसकी सेवा-बरदाश्त भी तो बहुत करते हैं—अपने बाल-बच्चों की तरह रखते हैं।"

"मैं अपने सामने इसे खिलाता हूँ, नौकर का भरोसा नहीं करता। मेरी चारपाई के पास ही इसका खटोला रहता है उसी पर सोता है।"

"बताओ! इतनी बरदास्त कौन कर सकता है!"

"सेर भर तो गोश्त पाता है, आधा सेर सबेरे और आध सेर सांझ को और दो सेर दूध—सेर भर तड़के, जहां भैंसें दुही गईं बस पहिले यह छक लेता है और इसी तरह सेर भर सांझ को। और बीच-बीच में टूँगार पाता रहता है कोई लड़का-बच्चा खाने बैठा उसके पास बैठ गया—उनसे कुछ पा गया।"

"हां, हर वक्त छका रहता है।"

"शिकार में जाता है तब इसे देखो। जिस खरगोश या हिरन को देख लेगा बस फिर वह सायत ही निकल जा सके, नहीं तो यह मार ही लेता है।"

"हिरन के बराबर दौड़ लेता है?"

"बड़े मजे से।"

"तभी तो आपने इसका नाम भी 'सिकारी' रक्खा है।"

"यह कुत्ता भी शिकारी जाति का है।"

"जरूर होयगा। देखिये, कुछ चौकन्ना है और हम लोगों को गौर से देख रहा है।"

"यह समझ गया कि हम लोग इसके सम्बन्ध की बात कर रहे हैं। क्यों बे?"

यह कहकर ठाकुर साहब ने उसे थपथपाया। शिकारी ने कान दाब कर दुम हिलाते हुए ठाकुर साहब की ओर देखा और तत्पश्चात पुनः मुँह घुमाकर हाँफने लगा।

ठाकुर बोले—"हमें थोड़ा-बहुत खटका ठाकुर ध्यानसिंह से है और किसी से हमें भय नहीं है।"

"बड़ा पाजी ठाकुर है।"

"पाजी तो खैर हई है। सामने नहीं आता—छिपे छिपे वार करना चाहता है। इसी मारे उससे खटका है। सामने आकर वार करने वाले से खटका नहीं होता। खटका तो इन नागों से है जो छिपकर काटना चाहते हैं।"

"यही बात है ठाकुर!"

(२)

उधर ठाकुर ध्यानसिंह कामतासिंह के अन्यतम शत्रु थे। छोटे जमींदार थे। कामतासिंह के मारे उनकी जमींदारी मिट्टी हो रही थी। उनका कुछ भी प्रभाव नहीं था। खास उनकी ही जमींदारी के आदमी उनकी अवहेलना करते थे। कोई काम पड़ता था तो कामतासिंह के आदमी उनकी जमींदारी के आदमियों को बेगार में पकड़ ले जाते थे। न ध्यानसिंह में इतनी शक्ति थी कि वह कछ हस्तक्षेप करें और न गांव वालें ही उनके कहने से विरोध करने को उद्यत होते थे। बल्कि प्रायः वे स्वच्छा से ही ध्यानसिंह के रोकते रहने पर भी कामतासिंह के काम पर चले जाते थे।

कोई पारस्परिक झगड़ा होता था तो उसका भी न्याय कामतासिंह से ही कराते थे ध्यानसिंह से बात भी न करते थे। यद्यपि कामतासिंह बहुधा न्याय के बहाने अन्याय ही करते थे, परन्तु तब भी गांव वाले कामतासिंह के पास जाते थें।

कामतासिंह का इतना आतङ्क, इतना प्रभाव ध्यानसिंह को असह्य हो रहा था। वह मन ही मन भुना करते थे, परन्तु विवश थे।

दोपहर का समय था। ध्यानसिंह अपने घर के बाहरी भाग में बैठे हुए थे। इस समय वह अकेले थे। इसी समय उनके पास एक २८, २६ वर्ष का हृष्ट-पुष्ट कसरती जवान पहुँचा उसे देखकर ध्यानसिंह बोले—"क्या है रामचरन? कैसे आये?"

रामचरण उनके सामने उकड़ूं बैठ गया और बोला—"आपके पास फरियाद लाये हैं, मालिक!"

"फरियाद मेरे पास ! कामतासिंह के पास जाओ—वही तुम लोगों का न्याओ करते हैं। हम काहे में हैं।"

"आप क्यों नहीं हैं सरकार, जमींदार तो आप ही हैं।"

"हाँ, खाली पसा लेने भरके, बाकी हुकुम तो यहाँ कामतासिंह का ही चलता है। झूठ कहते हैं ?"

"नहीं सरकार, कहते तो आप सच्ची ही हैं। गाँव की यह दशा न होती तो कामतासिंह की मजाल थी कि हमारे गाँव पर टेढ़ी निगाह डाल सकें। पर गाँव तो बिगड़ा ही हुआ है—सरकार कामतासिंह का बोलबाला है। पर अब तो हद होगई।"

"क्या हुआ ?"

"अब इज्जत आबरू पर भी नौबत आगई सरकार ! हम जात के अहीर जरूर हैं; पर इज्जत आबरू तो हमारी भी है सरकार।"

"हाँ क्यों नहीं ! इज्जत-आबरू तो सब की है चाहे जिस जात का हो" ध्यानसिंह ने उत्सुकता पूर्वक कहा।

"और कोई चाहे सह ले पर हम तो नहीं सहेंगे।"

"सहना भी न चाहिए। यह तो मैं सदा कहता आया हूँ, पर मेरी बात ही कोई नहीं सुनता। परन्तु बात क्या हुई, पहिले यह तो बताओ।"

"कामतासिंह ने हमारी आबरू ले ली सरकार।"

ध्यानसिंह लेटे हुए थे, उठकर बैठ गये और बोले—"क्या बात हुई ?"

"कल साँझ को हमारी जवान बहिन को, जब कि वह बाहर (शौच को) गई हुई थी कामतासिंह के आदमी उठा ले गये रात भर उसे रक्खा, सबेरे फिर यहीं छोड़ गये।"

"आँय !" ध्यानसिंह ने नेत्र विस्फारित करके कहा।

"हाँ मालिक ! हम तो किसी काम के नहीं रहे सरकार।"

यह कहते कहते रामचरण रो पड़ा।

"यह तो बड़ा गजब किया हराम जादे ने।"

"कुछ पूछिये नहीं सरकार, कलेजे में आग लगी है; यही लौ लगी है कि या तो उसकी जान ले लें या अपनी जान दे दें। पर एक तो गरीब आदमी ठहरे दूसरे सारा गाँव और पुलिस कामतासिंह के कब्जे की है। हमारी सहायता करने वाला कोई नहीं है सरकार !"

ध्यानसिंह का मस्तिष्क सक्रिय हो गया। उन्होंने देखा कि कामतासिंह से बदला लेने के लिए रामचरण एक अच्छा प्रश्न बन सकता है। अतः वह बोले—"यह तो बड़ा गजब हो गया रामचरन ! इस बेइज्जती से तो मर जाना अच्छा है। गाँव वालों को तो यह हाल मालूम हो गया होगा।"

"सब को नहीं तो हमारे पास-पड़ौसियों को तो मालूम ही हो गया, पर कामतासिंह के डर के मारे कोई सनक नहीं रहा है सब अनजान बने घूम रहे हैं, पर आपस में खुसुर-फुसुर चल रही है। इसी से हमने समझा है कि उन्हें पता लग गया।"

"तब तो अब तुम्हें चुप नहीं बैठना चाहिए इससे ज्यादा बेइज्जती और नहीं हो सकती। बेइज्जत होकर जिये तो क्या जिये !"

"बात तो सरकार यही है। इसलिए हम सरकार के पास आये हैं कि अब जैसा सरकार हुकुम दें वैसा करें।"

ध्यानसिंह कुछ क्षण सोच—विचार करने के पश्चात् बोले—"हिम्मत है?"

"सो तो जैसी आप सलाह देंगे वैसा होगा चाहे प्राण भले ही चले जाँय !"

"अच्छा तो सुनो !"

इसके पश्चात् दोनों में बहुत ही धीमे स्वर में वार्तालाप होने लगा।

(३)

वार्तालाप करने के पश्चात् ध्यानसिंह बोले- "खूब अच्छी तरह होशियारी से काम करना। पहिले उनका सब बखत कि किस समय क्या करते हैं, कहां रहते हैं, कहां जाते हैं। इन सब बातों को समझ

लेना। बस! निकल भर आना--फिर हम सब ठीक कर लेंगे।"

"देखिये भगवान के हाथ बात है।" यह कहकर रामचरण चल दिया।

तीन दिन व्यतीत होगये।

कामतासिंह शाम को झुट-पुटे के लगभग शौच के लिए बाहर निकला करते थे। साथ में दो लठ बन्द जवान और 'शिकारी' रहता था।

आज भी कामतासिंह उसी समय उसी प्रकार शौच के लिए निकले।

एक स्थान पर पहुँच कर कामतासिंह ने साथ के आदमी के हाथ से जल का लोटा ले लिया और आगे बढ़कर जुवार के खेत के पीछे एक खुले मैदान में चले गये। शिकारी तथा दोनों आदमी उसी स्थान पर खड़े रहे। शिकारी भूमि सूँघता हुआ इधर-उधर टहलने लगा।

ठाकुर के जाने के दस मिनट पश्चात् ही जिधर ठाकुर गये थे उस ओर से ठाकुर का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा। उन्होंने एक बार पुकारा "शिकारी।"

शिकारी तुरन्त चौकन्ना हो गया। एक क्षण के लिए उसने उस ओर देखा और दूसरे ही क्षण वह झपटकर उस ओर दौड़ा आगे। पहुँच कर उसने देखा कि कामतासिंह रक्त से लथपथ भूमि पर लोट रहे हैं और एक व्यक्ति भागा जा रहा है। शिकारी तुरन्त उस भागते हुए आदमी के पीछे दौड़ पड़ा। वह व्यक्ति कठिनता से बीस पचीस गज के फासले पर गया होगा कि पीछे से शिकारी उस पर टूट पड़ा। शिकारी के फांदने से वह व्यक्ति झोके में मुँह के बल गिरा परन्तु तुरन्त ही घूमकर खड़ा होने लगा। इसी समय शिकारी ने उसका गला पकड़ लिया। व्यक्ति के हाथ में छुरा था। उसने उससे दो बार तो किये, परन्तु फिर वह शिथिल पड़ गया और उसके हाथ से छुरा छूट पड़ा।

शिकारी ने दो-तीन झटके देकर उसका काम तमाम कर दिया।

यह व्यक्ति रामचरण अहीर था। शिकारी के शरीर से रक्त की

धारा बह रही थी। रामचरण को छोड़कर वह लौटा—थोड़ी दूर चला और गिर पड़ा, फिर उठकर चला फिर गिरा इस प्रकार तीन बार गिर उठकर वह कामतासिंह से तीन गज की दूरी पर पहुँच गया। दोनों लट्ठबन्द हक्का-बक्का से कामतासिंह के पास खड़े थे। सहसा एक उनमें से बोला—"यह तो ठण्डे हो गये। जल्दी जाकर गाँव में खबर करो।"

वह आदमी उधर गया। उधर शिकारी पेट के बल घिसट कर कामतासिंह की लाश की ओर जाने लगा। खड़ा हुआ व्यक्ति मन्त्रमुग्ध की भांति 'शिकारी' की ओर ताक रहा था।

अब कामतासिंह की लाश शिकारी से एक गज की दूरी पर रह गई थी। शिकारी शिथिल होकर निश्चेष्ट हो गया। कुछ क्षण तक वह पड़ा रहा। उस व्यक्ति ने समझा कि 'शिकारी' भी समप्त होगया। परन्तु सहसा शिकारी ने अपना अन्तिम बल लगाया। दो झटकों में वह घिसट कर कामतासिंह की लाश के निकट पहुँच गया। लाश के निकट पहुँच कर उसने लाश की छाती पर अपना मुँह रख दिया और इसी समय उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

हवा

(१)

पं० जगनन्दन प्रसाद मिश्र बड़े कट्टर ब्राह्मण थे। छुआछूत और बीघा-बिस्वा के पूर्ण अवतार। एक कपड़े के व्यापारी के यहाँ मुनीमी करते थे। लोग इनका कट्टरपन देखकर इन्हें खूब बनाया करते थे; परन्तु मिश्रजी या तो इतने बूदम थे कि लोगों का बनाना समझ नहीं पाते थे अथवा उन्हें अपने बनाये जाने में स्वयं आनन्द मिलता था। जो भी हो मिश्र जी थे बिलकुल गोल आदमी! जिस समय वह अपने भवन के द्वार पर बैठकर "हमरे मुरादाबाद मां" का व्याख्यान करते उस समय जान पड़ता था कि मुरादाबाद इस पुरुष-रत्न की पितृ-भूमि बन-कर धन्य हो गया है। यद्यपि मिश्रजी अपने वार्तालाप में "दिजियौ, किजियौ" की पुट देकर अपनी भाषा को पूर्ण मुरादाबादी भाषा बनाने का प्रयत्न करते थे; परन्तु फिर भी मुरादाबाद-भाषा-विशारदों के कथनानुसार उनकी भाषा मुरादाबादी नहीं थी। कुछ जानकार लोगों का कहना था कि मिश्रजी मुरादाबादी हैं ही नहीं। मिश्र होते तो मुरादाबादी भी होते, जब मिश्र ही नहीं हैं तब इन्हें मुरादाबाद का क्या पता। तब कौन थे? लोग कहते थे कि यह हैं त्रिपाठी! शहर में आकर मिश्र बन गये और मुरादाबाद से नाता जोड़ लिया। शहर में यह सब खप जाता है। परदेशी आदमी यहां आकर चाहे जो बन जाय!

शहर में तेली-तँबोली वैश्य बन जाते हैं—यद्यपि व वैश्यकर्म्मी तो होते ही हैं, अहीर-बारी इत्यादि ठाकुर बन जाते हैं, मोची-चमार कायस्थ और धाकर (निम्न श्रेणी के कान्यकुब्ज) कुलीन। इसी प्रकार बिस्वों में वृद्धि कर ली जाती है। अतः इस अन्धेरखाते से त्रिपाठी जी ने पूरा लाभ उठाया। शहर में आकर बीस बिस्वा के मुरादाबादी मिश्र बन गये।

'नया मुसलमान प्याज बहुत खाता है' की कहावत के अनुसार त्रिपाठी जी मिश्र बनकर कान्यकुब्जता की खराद पर चढ़ गये। एक तो कड़वा करेला दूसरे नीम चढ़ा। एक तो मिश्रजी पहले से ही कान्य-कुब्ज थे उस पर हो गये मुरादाबादी मिश्र। फिर क्या कहना था। ब्राह्मणत्व का पूरा ठेका उन्हीं को मिल गया।

संध्या का समय था और बाजार की छुट्टी का दिन! मिश्रजी के द्वार पर भांग बन रही थी। तीन चार अन्य आदमी भी मौजूद थे। एक व्यक्ति सिल पर भांग रगड़ रहा था। मिश्र नंगे बदन रानों तक धोती समेटे बैठे थे—कानों पर जनेऊ चढ़ा था। इसी समय एक पड़ौसी युवक उधर से निकला। मिश्रजी को देखकर खड़ा हो गया और बोला—"काहे मिश्र जी कान पर जनेऊ काहे चढ़ाये बैठे हो।"

"लघुशङ्का करके आये थे अभी हाथ नहीं धोये। जरा सा पानी देना हो।" मिश्रजी ने अन्तिम वाक्य भांग पीसने वाले से कहा।

उसके पास एक पीतल की जलपूर्ण बाल्टी रक्खी थी उसमें लोटे से पानी लेकर वह बोला—"आओ!"

मिश्रजी ने हाथ धोकर कान पर से जनेऊ उतारा। युवक ने पूछा—"क्यों मिश्र जी, जनेऊ कान पर क्यों चढ़ा लिया जाता है?"

"शास्त्र में लिखा है कि टट्टी-पेशाब के समय जनेऊ कान पर चढ़ा लेना चाहिए।"

"लेकिन क्यों? प्रश्न तो यह है।"

"यह आजकल के अँग्रेजी पढ़े हर बात में 'क्यों और काहे' लगा

देते हैं। शास्त्र की आज्ञा है—इसमें क्यों और काहे का क्या काम।"

"हमारी समझ में तो नंगे बदन यदि लघुशङ्का करने बैठे तो जनेऊ ऊपर चढ़ा ले चाहे कान पर या गले में। क्योंकि लघुशङ्का करने बैठने पर नंगे बदन होने से जनेऊ आगे आ जाता है। उस दशा में उसके अपवित्र होने की सम्भावना रहती है। परन्तु यदि कपड़े पहने हो तो जनेऊ कान पर चढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि उस दशा में जनेऊ आगे नहीं गिरता—कपड़ों में दबा रहता है।"

"सुनो इन अँग्रेजी पढ़ों की बातें! क्या कानून निकाला। अरे बच्चा यह हैं शास्त्र की बातें ऋषि लोगों की बनायी हुई इसमें तुम अपनी अक्किल न भिड़ाओ। ब्राह्मण को सूने मस्तक बाहर नहीं निकलना चाहिए—इसका तुम क्या मतलब लगाते हो?"

"बात यह है कि सूना मस्तक होने से जाति का पता नहीं लगता। प्राचीनकाल में ब्राह्मणों की यही दो तीन पहिचानें थीं, शिख-सूत्र और तिलक! बाहर निकलने में शिखा, टोपी-पगिया इत्यादि में छिप जाती है और जनेऊ कपड़ों के नीचे छिप जाता है। ऐसी दशा में केवल तिलक से ही मालूम पड़ सकता है कि यह ब्राह्मण है। इसीलिए तिलक लगाया जाता था। परन्तु आजकल जब कि सभी जातियाँ तिलक लगाने लगी हैं तब ब्राह्मणों के तिलक का कोई महत्व नहीं रहा।"

मिश्रजी उच्च स्वर से हँसकर बोले—"भाई वाह! क्या कुलाव मिलाये हैं। भइया! यह हैं धर्मशास्त्र की बातें—इनमें तुम्हारी बुद्धि नहीं लड़ सकती।"

युवक—"अब आप मानते ही नहीं।" कहकर मुस्कराता हुआ चला गया।

(२)

मिश्रजी का एक पुत्र था। वयस २२, २३ के लगभग। एफ० ए० तक पढ़कर एक कपड़े की फर्म में काम करने लगा था। कांग्रेसी होने के नाते खद्दरधारी था तथा छुआछूत का विरोधी।

एक दिन एक व्यक्ति बोला—"दादा तुम तो हो पूरे कन्नौजिया लेकिन तुम्हारा बबुआ (पुत्र) सबके साथ खाता-पीता है।"

मिश्रजी भृकुटी चढ़ाकर बोले—"सबके साथ खाता-पीता है ?"

"हाँ !"

"तुम्हें ठीक मालूम है ?"

"बिल्कुल ! कांग्रेसी होकर वह बिना खाये रह ही नहीं सकता।"

"लेकिन हमने तो उसे मना कर दिया था कि यह काम मत करना।"

"आपकी मानता कौन है।"

"न मानेंगे तो मैं निकाल बाहर भी करूँगा। मैं और किस्म का आदमी हूं।"

"खैर ! निकालियेंगा क्या। आजकल तो यह हवा ही चल रही है।"

"सो हवा बाहर ही बाहर चलती है, मेरे घर में नहीं आ सकती। जब तक मैं जिन्दा हूँ तब तक तो कोई हवा आती नहीं, बाद को चाहे जो हो।"

रात में जब बबुआ घर आया तो मिश्रजी ने उससे पूछा—"क्यों जी, तुम, सुना है, सबके साथ खाते-पीते हो।"

"कौन कहता था ?"

"कोई कहता हो, बात सच है या झूँठ ?"

"हाँ खाता तो हूँ।"

मिश्रजी मुँह फाड़कर बोले—"एँ !"

"हां ! क्या पेड़ा-बर्फी और बिना अन्न की मिठाई खाने में भी दोष है ?"

"हूँ ! हूँ ! इसमें तो दोष नहीं है।"

"तो बस फिर ! मैं कुछ दाल-भात तो खाता ही नहीं हूँ—मिठाई खा लेता हूँ।"

"मिठाई खाने में कोई हर्ज नहीं है।"

"हर्ज नहीं है समझ कर ही मैं खा लेता हूँ।"

"इसमें कोई हर्ज की बात नहीं है। मिठाई तो हम भी खा लेते हैं।"

इस प्रकार यह बात समाप्त हुई।

एक दिन बाजार की छुट्टी के दिन मिश्रजी सन्ध्या-समय गंगाजी पहुँचे। जैसे ही यह घाट पर पहुँचे तो इन्होंने देखा कि बबुआ दो अन्य युवकों के साथ एक तख्त पर बैठा खोन्चे वाले के दही-बड़े खा रहा है। यह देखकर मिश्रजी को गश आने लगा। एक तख्त पर थसक कर बैठ गये और दोनों हाथों से मुँह ढांप लिया।

उधर बबुआ ने जो पिता को देखा तो चट-पट खोन्चे वाले के पैसे देकर साथियों सहित खिसक गया। कुछ देर बाद जब मिश्रजी ने सिर उठाकर उधर देखा तो वहां कोई नहीं था। मिश्रजी ने आंखें मलकर पुनः गौर से देखा, परन्तु वहां कोई होता तो दिखाई देता।

रात में जब घर पर दोनों का सङ्गम हुआ तो मिश्रजी ने कहा— "काहे सरऊ! आज गंगा जी पर बैठे दही-बड़े खा रहे थे!"

बबुआ बोला—"नहीं तो।"

"साले अभी जूता लेता हूँ, इतने जूते मारूँगा कि चांद पिलपिली हो जायगी। ऊपर से झूँठ बोलता है।"

"अरे चाचा आज मैं गंगा जी गया ही नहीं।"

"ओफ ओह! हद है! मुझे झूठा बना रहा है। जब कि मैंने खुद अपनी आँखों से देखा।"

"किसी और को देखा होगा। उसकी शकल मुझसे मिलती होगी।"

"अबे ससुरे, कपड़े तो तेरे ही जैसे थे।"

"सो तो आजकल सब काँग्रेसी खद्दर का कुर्ता-टोपी पहनते हैं।"

"और तुम्हारे साथ वह श्याम-सुन्दर, रामसिंह और देवकी थे— सो—?"

"उनको बुलाकर पूछो। उनकी बाबत मैं कुछ नहीं जानता।"

"अच्छी बात है वह कह देंगे तब तो मानोगे?"

"हां मान लेंगे।"

दूसरे दिन मिश्रजी ने उन लोगों से पूछा तो उत्तर मिला—"वह बबुआ नहीं था, वह तो हमारा एक नातेदार था—उसकी शकल बिलकुल बबुआ से मिलती है।" रामसिंह ने कहा।

पण्डितजी अपनी जुगनू जैसी आँखें टिम-टिमाते हुए बोले, "अच्छा !"

"जी हां।"

"और हमने समझा बबुआ है। यह अच्छी दिल्लगी रही।" कहकर मिश्रजी हँस दिये।

इस प्रकार बबुआ ने मिश्रजी को बेवकूफ बनाकर अपना पिण्ड बचाया। मिश्र जी को विश्वास हो गया कि वह बबुआ नहीं था।

(३)

घर में एक छोटा सा कमरा बबुआ के लिए अलग था। एक दिन मिश्रजी को कुछ सादे कागज की आवश्यकता पड़ी। संयोगवश उनके पास कागज नहीं था। अतः आपने सोचा कि बबुआ के कमरे में होगा। यह सोचकर बबुआ के कमरे में पहुँचे। इधर-उधर देखा परन्तु कागज न दिखाई पड़ा। एक ओर एक अल्मारी थी। उसमें एक छोटा ताला लटक रहा था। आपने सोचा इस अलमारी में होगा, परन्तु ताला लगा है। आप यह सोच रहे थे और हाथ से ताले को पकड़ कर हिला रहे थे, इसी समय ताला खुल गया। आप बड़े प्रसन्न हुए। सोचा—ताले में चाबी लगी नहीं खुला रह गया। यह सोचते हुए अल्मारी खोली। कागज की खोज में दृष्टि तो दौड़ाई तो ऊपर के खाने में तीन-चार श्वेत गोले से दिखाई पड़े। आपने एक गोला उठाकर बाहर निकाला और रोशनी में उसे जो देखा तो ऊँह कहकर हाथ से छोड़ दिया। गोला फर्श पर गिरकर टूट गया और उसकी कुछ छीटें मिश्रजी के पैरों पर पड़ीं। मिश्रजी नाक दाब कर बोले, "अण्डा !" और बाहर भागे। बाहर निकल कर आपने उसी समय स्नान किया और बड़े क्रोध में भरे

"हर्ज नहीं है समझ कर ही मैं खा लेता हूँ।"

"इसमें कोई हर्ज की बात नहीं है। मिठाई तो हम भी खा लेते हैं।"

इस प्रकार यह बात समाप्त हुई।

एक दिन बाजार की छुट्टी के दिन मिश्रजी सन्ध्या-समय गंगाजी पहुँचे। जैसे ही यह घाट पर पहुँचे तो इन्होंने देखा कि बबुआ दो अन्य युवकों के साथ एक तख्त पर बैठा खोन्चे वाले के दही-बड़े खा रहा है। यह देखकर मिश्रजी को गश आने लगा। एक तख्त पर थसक कर बैठ गये और दोनों हाथों से मुँह ढांप लिया।

उधर बबुआ ने जो पिता को देखा तो चट-पट खोन्चे वाले के पैसे देकर साथियों सहित खिसक गया। कुछ देर बाद जब मिश्रजी ने सिर उठाकर उधर देखा तो वहां कोई नहीं था। मिश्रजी ने आंखें मलकर पुनः गौर से देखा, परन्तु वहां कोई होता तो दिखाई देता।

रात में जब घर पर दोनों का सङ्गम हुआ तो मिश्रजी ने कहा—"काहे सरऊ! आज गंगा जी पर बैठे दही-बड़े खा रहे थे!"

बबुआ बोला—"नहीं तो।"

"साले अभी जूता लेता हूँ, इतने जूते मारूँगा कि चांद पिलपिली हो जायगी। ऊपर से झूँठ बोलता है।"

"अरे चाचा आज मैं गंगा जी गया ही नहीं।"

"ओफ ओह! हद है! मुझे झूठा बना रहा है। जब कि मैंने खुद अपनी आँखों से देखा।"

"किसी और को देखा होगा। उसकी शकल मुझसे मिलती होगी।"

"अबे ससुरे, कपड़े तो तेरे ही जैसे थे।"

"सो तो आजकल सब कॉंग्रेसी खद्दर का कुर्ता-टोपी पहनते हैं।"

"और तुम्हारे साथ वह श्याम-सुन्दर, रामसिंह और देवकी थे—सो—?"

"उनको बुलाकर पूछो। उनकी बाबत मैं कुछ नहीं जानता।"

"अच्छी बात है वह कह देंगे तब तो मानोगे?"

"हां मान लेंगे।"

दूसरे दिन मिश्रजी ने उन लोगों से पूछा तो उत्तर मिला—"वह बबुआ नहीं था, वह तो हमारा एक नातेदार था—उसकी शकल बिलकुल बबुआ से मिलती है।" रामसिंह ने कहा।

पण्डितजी अपनी जुगनू जैसी आँखें टिम-टिमाते हुए बोले, "अच्छा !"

"जी हां।"

"और हमने समझा बबुआ है। यह अच्छी दिल्लगी रही।" कहकर मिश्रजी हँस दिये।

इस प्रकार बबुआ ने मिश्रजी को बेवकूफ बनाकर अपना पिण्ड बचाया। मिश्र जी को विश्वास हो गया कि वह बबुआ नहीं था।

(३)

घर में एक छोटा सा कमरा बबुआ के लिए अलग था। एक दिन मिश्रजी को कुछ सादे कागज की आवश्यकता पड़ी। संयोगवश उनके पास कागज नहीं था। अतः आपने सोचा कि बबुआ के कमरे में होगा। यह सोचकर बबुआ के कमरे में पहुँचे। इधर-उधर देखा परन्तु कागज न दिखाई पड़ा। एक ओर एक अल्मारी थी। उसमें एक छोटा ताला लटक रहा था। आपने सोचा इस अलमारी में होगा, परन्तु ताला लगा है। आप यह सोच रहे थे और हाथ से ताले को पकड़ कर हिला रहे थे, इसी समय ताला खुल गया। आप बड़े प्रसन्न हुए। सोचा—ताले में चाबी लगी नहीं खुला रह गया। यह सोचते हुए अलमारी खोली। कागज की खोज में दृष्टि तो दौड़ाई तो ऊपर के खाने में तीन-चार श्वेत गोले से दिखाई पड़े। आपने एक गोला उठाकर बाहर निकाला और रोशनी में उसे जो देखा तो ऊँह कहकर हाथ से छोड़ दिया। गोला फर्श पर गिरकर टूट गया और उसकी कुछ छीटें मिश्रजी के पैरों पर पड़ीं। मिश्रजी नाक दाब कर बोले, "अण्डा !" और बाहर भागे। बाहर निकल कर आपने उसी समय स्नान किया और बड़े क्रोध में भरे

हुए अपनी पत्नी से बोले, "अब इस लड़के का हमारे साथ गुजारा नहीं होगा।"

"क्यों क्या हुआ ?"

"जरा उसके कमरे में जाकर देख लो।"

पत्नी गयी और नाक दाबें लौटकर बोली—"यह तो बबुआ ने बड़ा गजब किया।"

"तुम्हीं देखो अब क्या किया जाय।"

"अब हम क्या बतावें।"

"बस इसे अलग कर देना चाहिए।"

माँ बैठकर रोने लगी। मिश्रजी बकते-झकते छत पर चले गये।

रात में बबुआ से उनकी बहुत कुछ कहा-सुनी हुई। मिश्रजी ने क्रोध में आकर पहले बबुआ को चार-पाँच थप्पड़ मारे फिर अपना सिर पीट लिया।

दूसरे दिन से बबुआ गायब हो गया। एक दिन तो मिश्रजी ने धैर्य्य धारण किया परन्तु दूसरे दिन जब बबुआ का पता न लगा तो वह घबराकर दौड़ लगाने लगे।

इकलौता लड़का। जिसने सुना उसने ही मिश्रजी को धिक्कारा कि सयाने लड़के पर हाथ चला बैठे! मिश्रजी बड़े जेर! उल्टे लोग उन्हीं को बेवकूफ बना रहे हैं।

एक कान्यकुब्ज बोले—"अण्डा खाता है तो क्या हुआ। तुम कात्यायनी हो, माँस खाते हो कि नहीं ?"

"हाँ सो तो हमारे यहाँ खाया जाता है, पर हम नहीं खाते।"

"तो बस फिर! जब खाया जाता है तो आप न खायें तो इससे क्या और जैसा मांस वैसा अण्डा!"

"अण्डा तो अपने यहाँ नहीं खाया जाता।"

"न खाया जाय! पर हम तो दोनों में कोई भेद नहीं समझते।"

मिश्रजी सिर हिलाकर निरुत्तर से हो गये। अखबार में निकलवाया

गया कि बेटा लौट आओ अब हम तुम्हारी बातों में दखल नहीं देंगे— इत्यादि ।

तीसरे दिन बबुआ आ गया ।

अब बबुआ धड़ल्ले के साथ कान्यकुब्जता के सब नियम तोड़ता रहता है । मिश्रजी से कोई कहता तो उत्तर देते हैं—"क्या करें ! आज-कल हवा ही ऐसी चल गई है ।"

आविष्कार

(१)

प्रोफेसर चन्द्रायण विज्ञान के आचार्य थे। वैसे तो वह पदार्थ तथा रसायन-शास्त्र दोनों में प्रवीण थे; परन्तु उन्हें विशेष अनुराग रसायन शास्त्र से था।

उन्होंने अपने घर में अपनी एक निजी प्रयोगशाला बना रक्खी थी। वह जो कुछ खा-पीकर बचा पाते थे, वह सब इस प्रयोगशाला पर खर्च कर देते थे।

रात के बारह बज चुके थे। प्रोफेसर साहब नित्यानुसार अपनी प्रयोगशाला में काम कर रहे थे। इसी समय स्प्रिट-लेम्प पर एक परीक्षण-नलिका को गर्म कर रहे थे। पत्नी की आहट पाकर नलिका पर दृष्टि जमाये हुए ही उन्होंने कहा—"आज अभी सोई नहीं ?"

पत्नी जमुहाई लेते हुए बोली—"नींद ही नहीं पड़ती।"

"क्यों ?"

"क्या पता ! अकेले पड़े-पड़े नींद भी नहीं आती। कोई बात करने वाला होना ही चाहिए।"

सहसा नलिका से प्रकाश का एक पुंज निकल कर वायु में विलीन हो गया।

"तुम्हें अपने इस खेलवाड़ से ही छुट्टी नहीं मिलती।"

प्रोफेसर साहब मुसकरा कर बोले—"तुम इसे खिलवाड़ समझती हो शीला !"

"और नहीं तो क्या है ?"

"यदि इन खेलवाड़ों में से मेरा एक भी सफल हो जाय तो उससे जानती हो, मानव-जाति का कितना उपकार हो सकता है ?"

"जब मेरा ही उपकार नहीं होता तो मानव-जाति का क्या उपकार होगा ।"

"बिना अपने उपकार का बलिदान किये मानव-जाति का उपकार नहीं होता ।" प्रोफेसर ने परीक्षण नलिका में एक तरल पदार्थ डालते हुए कहा ।

तरल-पदार्थ डालते ही नलिका में से एक सुनहला प्रकाशपुंज निकल कर वायु में विलीन हो गया ।

"बस, यही आतिशबाजी करते-करते जीवन समाप्त हो जायगा और समस्त अभिलाषाएं मन में ही रह जायँगी । अभी तक सन्तान का मुख देखना भी नसीब नहीं हुआ ।"

"सन्तान ! सन्तान की चिन्ता मुझे नहीं है । सन्तान हो जाय तो अच्छा; न हो तो अच्छा ।"

"मन समझाने के लिए चाहे जो समझ लो ।"

"मन तो संसार समझाता है शीला, वास्तविकता को तो कदाचित् ही कोई जान पाता है । हम भारतीयों का तो समस्त जीवन मन समझाने में ही समाप्त हो जाता है ।"

"हम वास्तविकता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं । हमारे वेद-शास्त्रों में क्या नहीं है ?"

प्रोफेसर साहब परीक्षण-नलिका को लेम्प पर से हटाकर हँसने लगे और शीला की ओर मुंह करके बोले—"हमारे घर में खजाना गड़ा है, परन्तु जरा उसमें से एक रुपया निकाल कर दिखाओ, तो जानूं । वेद-शास्त्रों में सब कुछ है, इस धारणा ने ही हमें इस पतन के गर्त में गिराया है । आज जिस रेडियो का एक स्विच घुमाकर तुम सैकड़ों-

हजारों मील पर बोलते-गाते हुए आदमी का कण्ठ-स्वर सुन लेती हो— वह रेडियो, क्या तुमने कभी विचार किया है शीला, वेद के अन्दर से निकाल कर नहीं रख दिया गया। इसके पीछे एक प्राणी की समस्त आयु की तपस्या और त्याग की शक्ति लगी हुई है। उस प्राणी ने सांसारिक सुखों को लात मार कर न जाने कितनी रातें अकेले प्रयोगशाला में बिताई होंगी। जब कि संसार यौवन की मदिरा के नशे में अपनी प्रेयसी को अङ्क में लिये सुखनिद्रा में व्यतीत करता रहा होगा, उस समय यह प्राणी अकेला भोजन तथा निद्रा का तिरस्कार करके और कदाचित अपनी प्रेयसी की भावनाओं की उपेक्षा करके अपने कार्य में तल्लीन रहा होगा। उसी महात्मा के जीवनोत्सर्ग, अपने को मानव-कल्याण के लिए मिटा डालने की भावना के फल का आज संसार रसास्वादन कर रहा है। न जाने कितने आदमी उसका नाम भी नहीं जानते, परन्तु उसके त्याग और तपस्या से लाभान्वित हो रहे हैं।"

शीला बोली—"हमारे ऋषियों ने भी ऐसे ही त्याग और तपस्या करके संसार का कल्याण किया।"

"निस्सन्देह, परन्तु हमने क्या किया ? हमने केवल उनके सिद्धान्तों को ले लिया, व्यावहारिकता को छोड़ दिया। बिना व्यावहारिकता के केवल सिद्धान्तों पर मनुष्य की आस्था और श्रद्धा अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती।"

शीला जमुहाई लेकर बोली—"तुम क्या कर रहे हो यह बताओ।"

"मैं भी कुछ कर ही रहा हूँ। इस अनन्त प्रकृति सागर के तट पर छिछले जल में खड़ा हुआ इस प्रयत्न में लगा हूँ कि कदाचित् कोई छोटा मोटा मोती हाथ लग जाय।"

"लग चुका !" कहकर शीला उठी और चली गयी।

प्रोफेसर के मुख पर एक मन्द मुस्कान आ कर विलीन हो गई और वह पुनः अपने कार्य में लग गया।

(२)

शीला दुखी रहती थी। उसकी धारणा थी कि वह एक पागल व्यक्ति के पल्ले बांध दी गई है। वह यौवन की सीमा को पार कर रही थी, उसकी वयस पैंतीस वर्ष से ऊपर हो चुकी थी। विवाह के पश्चात् कदाचित कुछ वर्ष तो उसने पति के साथ सुख पूर्वक बिताये, परन्तु उसके पश्चात् वह पति के प्रेमपूर्ण व्यवहार से वंचित हो गई। उसका हृदय अब भी प्यासा था, उसका चित्त अब भी पति से प्रेमी के व्यवहार की मांग करता था, परन्तु उसे मिलती थी केवल उपेक्षा और निराशा।

प्रयोगशाला उसके लिए उतनी ही दुखदायी थी जितनी कि, एक सौत हो सकती है। उसका वश चलता तो वह प्रयोगशाला को नष्ट कर डालती।

सहसा एक दिन रात के दो बजे प्रयोगशाला में असाधारण खट-पट सुनकर वह जाग पड़ी। पहले तो कुछ क्षण पड़े ही पड़े सुनती रही—ऐसा प्रतीत होता था कि प्रयोगशाला में कोई कूद-फांद रहा है। अन्त में वह उठी और प्रयोगशाला में पहुंची। वहाँ जाकर उसने देखा कि, उसके पति महोदय हाथ में एक छोटी शीशी लिये हुए पागलों की भांति नाच रहे हैं। यह दृश्य देखकर उसके चित्त में घृणा उत्पन्न हुई—उसने सोचा कि प्रोफेसर महोदय विक्षिप्त हो गए। वह कुछ कर्कश स्वर में बोली–"यह क्या हो रहा है? क्या इसी प्रकार संसार का कल्याण होगा? संसार का कल्याण करने के पागलपन में तुम अपना मनुष्यत्व भी खोये दे रहे हो।"

प्रोफेसर ने लपक कर शीला के गले में हाथ डाल दिया और बोले—"शीला, जो मैं चाहता था वह मिल गया। इस शीशी को देखो, इस शीशी की पांच बूंदें तुम्हें सोलह वर्ष का यौवन प्रदान करने की क्षमता रखती हैं। इसकी पांच बूंदें मनुष्य के शैथिल्योन्मुखी रक्त कोषों में पुनः इतनी गति ला सकती हैं कि उसका रूप रंग तथा शक्ति नवयौवन में पदार्पण करते हुए मनुष्य जैसे हो जायँ। मेरी शीला अब पुनः सोलह

वर्ष की युवती हो जायगी।"

यह कहकर प्रोफेसर ने शीला का मुख चूम लिया !

शीला विश्वास तथा अविश्वास के मध्य में झूलती हुई बोली—"क्या कहते हो।"

"मैं सत्य कहता हूँ शीला! अब तुम पर फिर से नवयौवन आ जायगा।"

शीला विश्वास की ओर ढुलकती हुई प्रसन्न मुख होकर बोली "सच ?"

"बिल्कुल सच !"

"तो लाओ पाँच बूँद पिला दो।"

"अभी नहीं ! उसके पहले तुम्हारे शरीर की शुद्धि करनी पड़ेगी। पेट तथा आँतों को बिल्कुल साफ करना पड़ेगा।"

"परन्तु तुम्हें यह कैसे विश्वास कि, जो वस्तु तुम बनाना चाहते थे, वह बन गई।"

प्रोफेसर उसे मेज के पास ले गया। मेज पर एक पिंजरे में चूहे का एक जोड़ा था।

"इस जोड़े को देखो शीला !"

"ये चूहे तो बड़े सुन्दर और चपल हैं।"

"परन्तु कल ये दोनों पिंजरे के एक कोने में मृतप्राय पड़े हुए थे। मैंने इन्हें जो रासायनिक पदार्थ खिलाये उससे ये दोनों वैसे ही हो गये थे जैसा कि, एक सत्तर बरस का बूढ़ा हो जाता है।"

"फिर क्या हुआ ?"

कल मैंने इस पदार्थ की चौथाई-चौथाई बूँद इन दोनों को दी थी—अब आज इन्हें देखो—इनमें कितना जीवन है। अब तो ये दोनों बच्चे से जान पड़ते हैं।"

"बड़ी अद्भुत वस्तु है। इससे तो हम लाखों रुपये कमा लेंगे ?"

"रुपये की बात सोचती हो शीला! यह पदार्थ क्या रुपयों से खरीदा जा सकता है ? संसार भर की धनराशि भी इसकी एक बूँद

नहीं प्राप्त कर सकती। इसको ले सकती है केवल जगत् के कल्याण की, मानव-जाति के उपकार की भावना।"

"इसका पहिला प्रयोग तो चूहा पर हो चुका, दूसरा किस पर होगा ?" शीला ने पूछा।

"तुम पर शीला। सबसे प्रथम तुम इसकी अधिकारिणी हो, क्योंकि तुमने इसके निर्माणकाल में मेरे वियोग, मेरी सहचरहीनता का क्लेश भोगा है !"

शीला गद्गद् होकर पति से लिपट गई !

× × ×

शीला एक बिस्तर पर अज्ञानावस्था में लेटी है। प्रोफेसर उसके पलँग के पास बैठे हैं। कालेज से उन्होंने एक सप्ताह की छुट्टी ले ली है। प्रोफेसर रात-दिन शीला के पलँग के पास ही रहते हैं। क्रमशः शीला का शरीर परिवर्तित होने लगा। उसकी ढीली पड़ती हुई खाल पुनः खिचकर नवयौवना तरुणी की जैसी हो गई, उसके बाल जिन पर कालिमा का रङ्ग कुछ फीका हो चला था, पुनः काले तथा चमकीले हो गये, उसकी ढलती हुई मांस-पेशियाँ फिर सुदृढ़ तथा पुष्ट हो गईं, उसके गौर वर्ण में जो पीलापन आ चला था वह लालिमा में परिवर्तित हो गया !

एक सप्ताह पश्चात् प्रोफेसर ने शीला की बेहोशी दूर की। उसे फलों का रस पीने को दिया। तीन-चार दिन में शीला उठकर बैठने लगी।

शीला ने पूछा—"क्या हुआ था ?"

"तुम्हें क्या मालूम होता है शीला ?"

"मुझे तो अपने शरीर में एक अद्भुत शक्ति और उल्लास का अनुभव हो रहा है।"

"अच्छा अब अपना मुँह देखो !" यह कहकर प्रोफेसर ने उसके हाथ में एक दर्पण दिया। दर्पण में अपना मुँह देखकर शीला के नेत्र

विस्फारित हो गये। वह बोली—"क्या सचमुच मैं ऐसी हो गई हूँ ?"

"बिलकुल ! प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता। अपने हाथ-पैर देखो !"

शीला ने अपनी बाँहें तथा अन्य अङ्ग देखे और प्रसन्न होकर बोली—"ये तो वैसे ही हो गये जैसे कि सोलह-सत्रह बरस की उमर में थे।" यह कहकर शीला ने हर्ष-विभोर होकर नेत्र मूंद लिये।

(२)

क्रमशः जब प्रोफेसर की पत्नी के काया-कल्प की बात लोगों को ज्ञात हुई तो वे प्रोफेसर को लगे घेरने ! बड़े-बड़े लखपती बुड्ढाञ्ची प्रोफेसर की खुशामद करने लगे कि, वह वस्तु उन्हें भी दी जाय और जितना रुपया वह चाहें ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वैज्ञानिक भी प्रोफेसर से मिल कर उस पदार्थ के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए आने लगे। परन्तु प्रोफेसर ने सबको एक ही उत्तर दिया—"संयोगवश मेरी पत्नी मेरी प्रयोगशाला का कोई पदार्थ खाने से ऐसी हो गई। मुझे अभी पता नहीं लगा कि, वह पदार्थ क्या है। मैं उसका अन्वेषण कर रहा हूँ।" लोग निराश होकर वापस चले जाते थे।

एक दिन शीला ने कहा—"तुम यह पदार्थ कब खाओगे ?"

"मैं !" प्रोफेसर ने कुछ चौंककर कहा।

"हाँ, तुम।"

"परन्तु मेरा तो ऐसा कोई इरादा नहीं है।"

"क्यों ?"

"मुझे यौवन की इच्छा नहीं। यौवन आने से मेरा चित्त अपने लक्ष्य की ओर से हट जायगा।"

"परन्तु तुम्हारा लक्ष्य तो तुम्हें मिल गया ?"

"अभी बहुत कुछ बाकी है शीला ! मैं एक ऐसे पदार्थ की खोज में हूँ जो मनुष्य के जीवन को यथेच्छा दीर्घ कर सके।"

"मुझे जवान बनाकर स्वयं बूढ़े ही बने रहना चाहते हो ?"

"मुझे इसी में प्रसन्नता है।"

"परन्तु मुझे तो नहीं है। तुम्हें बूढ़ा नहीं देखना चाहती।"

"यदि संसार का कल्याण चाहती हो तो मुझे इसी दशा में रहने दो शीला।"

"संसार गया भट्टी में ! मैं संसार का सुख भोगना चाहती हूँ। यदि यौवन पाकर भी उसे व्यर्थ गँवा दिया तो उससे क्या लाभ ?"

"यदि मैं स्वयं संसार का सुख लूटने लगूँगा तो फिर संसार का हित-साधन कैसे कर सकूँगा। यह तो सोचो।"

"आखिर तुम संसार के पीछे इतने पागल क्यों होते हो। हमने संसार का हित करने का ठेका नहीं लिया है।"

इस प्रकार शीला ने बहुत कहा पर प्रोफेसर ने शीला की बात नहीं मानी। उसने कहा "मैं यह पदार्थ केवल उस समय खाऊँगा जब मैं समझ लूँगा कि, मेरा अभीष्ट पूरा हो गया और अब मुझे संसार का सुख लूटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना है।"

"ऐसा दिन कभी न आयेगा।"

"न आवे ! मुझे उसकी चिन्ता भी नहीं है।"

"तो तुम अपने आविष्कार से न रुपया ही कमाते हो, न स्वयं ही उसका उपयोग करते हो, तब तुम्हारे इस परिश्रम से तुम्हें क्या लाभ हुआ ?"

"मैंने अपने लाभ की बात तो कभी सोची भी नहीं।"

इस प्रश्न को लेकर शीला ने इतना झगड़ा मचाया कि, पति से रुष्ट होकर और कभी न आने की बात कहकर वह मायके चली गयी।

प्रोफेसर महोदय अकेले रह गये।

अन्त को एक दिन लोगों ने प्रोफेसर को अपने घर से लापता पाया। उसके कुछ मित्रों ने उसके घर में प्रवेश करके देखा कि, प्रयोग-शाला की सब वस्तुएँ टूटी-फूटी पड़ी हैं। मेज पर एक कार्ड रक्खा हुआ

है। उस पर लिखा है—"मैं संसार का त्याग कर रहा हूं, मेरी खोज न की जाय ! मैं अपना शेष जीवन किसी निर्जन स्थान में प्रकृति के साथ क्रीड़ा करके बिताऊंगा। क्योंकि जब तक मनुष्य में स्वार्थ-त्याग, विश्व-प्रेम तथा मानव-कल्याण की भावना उत्पन्न नहीं होती, तब तक लोक-हित की दृष्टि से कोई भी आविष्कार किया जाय उसका सदुपयोग न होकर केवल दुरुपयोग ही होगा।"

कथा

(१)

प्रातःकाल के छः बज रहे थे। इसी समय एक प्रौढ़ व्यक्ति जो शरीर का हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ था गंगा-स्नान के लिए जा रहा था। इस व्यक्ति के हाथ में पीतल का एक छोटा कमण्डलु था, शरीर पर केवल एक रामनामी, बगल में धोती-अँगौछा, नंगे पैर, नंगे सिर !

गङ्गा-तट पर पहुँचकर उसने एक गंगापुत्र के तख्त पर आसन जमाया। गंगापुत्र उसे देखकर बोला—"सदा जय रहे, भागीरथी चोला प्रसन्न रक्खे। ठंडाई बनेगी। दादा ?"

"हाँ बनेगी क्यों नहीं।"

गंगापुत्र ने पुकारा—"अरे मोहना, ओ मोहना।"

एक ओर से आवाज आई 'आये।'

"साले का तलुवा नहीं लगता। इधर-उधर घूमा करता है।"

"बच्चा है ! अभी उसकी खेलने खाने की उमर ही है।"

"तो दद्दू यहाँ कौन खेत जोतना पड़ता है। खाली तखत पर बैठे रहने का काम है !"

इसी समय मोहन आ गया। १२, १३ बरस की वयस। आते ही पूछा—"का है चाचा ?"

"हैं तुम्हारा सिर ! ससुरा पूछता है, का है। चलो इधर आकर

सिल धोश्रो। लोटा भर लाश्रो।"

"मसाला है कि मँगावें ?" दादा ने पूछा।

"श्राज भर को तो है कल देखा जायगा।"

गंगापुत्र ने झटपट एक थैली से ठंडाई का मसाला तथा भाँग निकाली और पीसने का कार्य आरम्भ कर दिया।

"शाम को यहाँ कथा होती है ?" दादा ने प्रश्न किया।

"हाँ दद्दू।"

"रामायण की ?"

"हाँ दद्दू।"

"श्रच्छी कहते हैं।"

"हाँ श्रच्छी कहते हैं। हमें तो श्रच्छी लगती है दूसरे की हम जानते नहीं।"

"भीड़-भाड़ होती है ?"

"हाँ! बहुत स्त्री-पुरुष श्राते हैं।"

"श्राज हमारी भी इच्छा है कि हम भी सुनें।"

"जरूर सुनो दद्दू! सुनने लायक है।"

"श्राठ बजे से होती है ?"

"हाँ! श्राठ ही समझो। श्राठ बजे लग्गा लग जाता है।"

"खतम कब होती है ?"

"दस बजे! दो घंटे होती है डट के।"

"श्राज जरूर श्रावेंगे।"

"तो ठंडाई भी यहीं श्राकर छानना। हम बना रक्खेंगे।"

"श्रच्छी बात है—तब तो सात बजे श्रा जायँगे।"

दद्दू ने झट टेंट से एक रुपया निकाल कर गंगापुत्र के सामने फेंका श्रौर कहा—"तो सामान मँगा लेना।"

"कौन जल्दी थी—शाम को ले लेते।"

"वह सब ठीक है।"

ठंडाई तैयार होने पर गंगापुत्र ने पहले दद्दू को पिलाई तत्पश्चात्

स्वयं पी! जब थोड़ी शेष रह गई तो मोहन को देकर कहा—"ले पी जा।"

मोहन ठण्डाई देखकर बोला—"हूँ! हमारे लिए इत्ती ही।"

"बहुत तो है!" गंगापुत्र बोला।

दद्दू बोल उठे—"अभी से ज्यादा भाँग मत पिया करो।"

"अरे दद्दू यह साला बड़ा नसेबाज होता जा रहा है।"

"तुम्हीं बनाये दे रहे हो—इसका क्या दोष।"

"हम तो दद्दू इस मारे दे देते हैं कि आत्मा नहीं मानती। हम कोई चीज खायँ—पियें और यह खड़ा मुँह ताके—यह बात आत्मा स्वीकार नहीं करती।"

"नशे की चीज के सम्बन्ध में ऐसा नहीं करना चाहिए।"

"सो दद्दू हम न भी दें तब भी यह साला पियेगा तो जरूर ही। और भाँग पीने में हर्ज भी नहीं है। हम भी बचपन से ही पीने लगे थे। भाँग से तो हम लोग बच ही नहीं सकते।"

"यह बात दूसरी है!"

"हाँ दद्दू! अपना तो यही शौक है। दोनों समय भाँग छानना। गंगा माता की शरण में पड़े रहना और आप लोगों की जय जयकार मनाना। यही हमारा रोजगार समझो, काम समझो। हमारे बाप-दादा भी यही करते आये और आगे हमारे लड़के भी यही करेंगे। इस मारे भाँग को तो हम रोकते नहीं। हाँ और नशे के हम शत्रु हैं। चरस, अफीम, शराब इनसे दूर रहते हैं। इसके वास्ते भी इन्हीं चीजों की रोक-टोक है। भाँग की रोक-टोक हम लोग नहीं करते।"

"तब ठीक है।"

यह कह कर दद्दू स्नान करने चले गये।

(२)

संध्या समय दद्दू पुनः गंगा-तट पहुँचे। देखा कि गङ्गापुत्र भांग

पीसने में जुटा है। दद्दू को देखते ही बोला—"आओ दद्दू! बस तैयार ही है—छानना बाकी है।"

"हाँ! हाँ! खूब मजे से छानो, कोई जल्दी नहीं है।"

"बस तैयार है। मोहन जाकर दो पैसे की बरफ तो ला, ले यह पैसे। दद्दू स्नान भी करोगे?"

"हां! इच्छा तो है। शौच भी जायँगे।"

"तो दद्दू उस पार रेती में जाओ।"

"सो तो जायँगे ही।"

थोड़ी देर में भाँग तैयार होगई। दद्दू ने भाँग पीकर एक नाव वाले को पुकारा। उसकी नौका में बैठ कर बीच गङ्गा की रेती में गये।

लोटे में पानी लेकर रेती में चले गये। कुछ दूर निकल जाने पर दद्दू ने कुछ दूरी पर दो मनुष्यों की धुँधली मूर्ति देखी। संध्या का अन्धकार बढ़ रहा था।

शौच से निवृत्त होकर जब दद्दू नौका की ओर लौटे तो वे दोनों मूर्तियाँ भी आगई थीं। उनकी नौका अलग खड़ी थी। उस नौका पर एक वृद्धा स्त्री बैठी हुई थी। दोनों मूर्तियों में एक तो पुरुष था दूसरी स्त्री। पुरुष की वयस चालीस के लगभग थी। स्त्री तरुणी, २५, २६ वर्ष की तथा साधारणतया सुन्दरी थी।

स्त्री वृद्धा के पास नौका में बैठ गई। नौका चल दी। पुरुष रह गया।

दद्दू की ओर बढ़कर उसने पूछा—"यह आपकी नाव है?"

"हाँ कहिये?"

"कुछ नहीं, उस पार जाना था।"

"तो आइये बैठिये—मैं जा रहा हूँ।"

"आपको कोई कष्ट ···।"

"अजी साहब—नाव में तमाम जगह है। कष्ट की कौन बात है।"

"धन्यवाद!"

दोनों नौका में बैठकर चले। दद्दू ने पूछा—"आप यहीं रहते हैं?"

"जी नहीं। मैं तो परदेशी हूँ।"

"यहाँ रिश्तेदारी होगी।"

"जी नहीं। मैं कथा-वाचक हूं।"

"अच्छा ! आपकी कथा कहाँ होती है ?"

"यहीं तो होती है उस पार।"

"रामायण की कथा ?"

"जी हां !"

"अच्छा ! आप ही कथा कहते हैं मैं आज आपकी कथा सुनने हो आया हूँ।"

"अच्छा ! यह मेरा सौभाग्य है।"

"आपकी बड़ी प्रशंसा सुनो इससे उत्सुकता उत्पन्न हुई।"

"हाँ लोग प्रशंसा करते हैं। परन्तु यह उनकी दया है। मुझ में तो कोई ऐसी बात नहीं है। मैं तो केवल रामगुणानुवाद करता हूँ।"

"खैर आपको यही कहना शोभा देता है।"

"आपने बड़ी कृपा की। आज कथा भी बड़ी अच्छी है।"

"आज कौन प्रसंग है ?"

"आज फुलवारी का प्रसंग है।"

"वाह ! बड़ा सुन्दर है।"

इसी प्रकार की बातें करते हुए दोनों इस पार आये। कथा-वाचक महोदय तो अन्यत्र चले गये। दद्दू पुनः उसी गङ्गापुत्र के तख्त पर आकर बैठ गये।

"अब स्नान कर डालो दद्दू !" गङ्गापुत्र बोला।

"हाँ।"

दद्दू इस समय विचार-मग्न थे। कथा-वाचक के साथ वह तरुणी कौन थी ? दोनों अकेले रेती में क्यों गये थे ? वृद्धा कौन है ? इत्यादि प्रश्न उनके मन में उठ रहे थे। यह सोचते-सोचते दद्दू ने स्नान किया और पुनः आकर तख्त पर बैठ गये।

तख्त पर बैठ कर गंगापुत्र से बोले—"यह कथा-वाचक कैसे आदमी हैं ?"

"अच्छे हैं दद्दू !"

"चरित्र के भी अच्छे होंगे।"

"अभी तक कोई बात तो सुनने में नहीं आई।"

दद्दू ने सोचा—"संभव है वह तरुणी उनकी पत्नी हो। परन्तु फिर खयाल आया कि यदि पत्नी होती तो उन्हीं के साथ नौका में बैठकर आते। अलग से आने की क्या आवश्यकता थी।"

दद्दू के मन ने कहा—"जरूर दाल में कुछ काला है।"

दद्दू पहले भी अनेक कथावाचकों की कथा सुन चुके थे। उनमें अधिकांश विद्वान तथा चरित्रवान थे। परन्तु इन कथा-वाचक के सम्बन्ध में उनके हृदय में सन्देह उत्पन्न होगया। दद्दू ने सोचा—"इनका पता लगाना चाहिए कि किस वेश में हैं।"

"अच्छा अब समय तो होगया—कथा आरंभ होने वाली है।"

"हाँ दद्दू ! बस चलते ही हैं।"

थोड़ी देर में गङ्गापुत्र दद्दू को लेकर चला।

(३)

कथा-स्थान पर पहुँच कर दद्दू ने देखा कि काफी भीड़ जमा है। व्यास गद्दी के निकट स्त्रियों का समूह और उनके पीछे पुरुषों का। दद्दू को देखकर कथा-वाचक महोदय ने उन्हें बुलाकर अपने निकट ही बिठाया। पुरुषों में अनेक दद्दू के परिचित थे। उनसे दद्दू का प्रणाम नमस्कार हुआ।

कथा आरम्भ हुई। कथा-वाचक महाशय खींच-तान करके अर्थ समझाने लगे। जनता वाह-वाह करने लगी। दद्दू चुपचाप बैठे सुनते रहे।

कथा समाप्त होने पर जब ददू चले तो गंगापुत्र ने पूछा—"कैसी रही।"

"ठीक है! भई, अर्थ और व्याख्या करने में खींच-तान बहुत करते हैं।"

"ददू यह तो हम जानते नहीं! इतना पढ़े ही नहीं हैं। हमें तो सुनने में अच्छी लगती है।"

"हाँ! खैर तुम उन गूढ़ बातों को नहीं समझ सकते। लेकिन एक बात बताता हूँ।"

"कहिये!"

"कोई न कोई काण्ड होने ही वाला है।"

"काण्ड कैसा ददू?"

"बस देख लेना। इतनी बात बता दी है।"

"अरे नहीं ददू! काण्ड-वाण्ड कुछ न होगा। हम लोग यहाँ क्या खाली चन्दन घिसने को बैठे हैं। जरा कोई बात देखें तो मारे लाठियों के भुरकुस निकाल दें।"

"तुम्हें पता लगेगा तब तो।"

"हमसे कोई बात नहीं छिप सकती।"

"हमें जो नाव वाला ले गया था उससे पूछना।"

"अच्छा!"

"हाँ!"

"हम अभी बुलाते हैं।"

यह कहकर उसने मोहन से कहा—"जरा शिवनाथ को बुला लेना।"

थोड़ी देर में शिवनाथ आगया। शिवनाथ से ददू ने पूछा—"ये औरतें कौन थीं?"

"मैं नहीं जानता सरकार! जयदयाल की नाव पर गयी थीं।"

"अच्छा उसे बुलाओ।"

जयदयाल के आने पर उससे भी यही प्रश्न किया गया। जयदयाल

बोला—"मेरी नाव पर तो आज ही दोनों गयी थीं।"

"कथा-वाचक भी साथ गये थे।"

"नहीं वह दूसरी नाव पर थे।"

"रेती में अकेले दोनों गये थे।'

"साथ तो गये नहीं। पहले कथा-वाचक जी चले गये थे, फिर वह औरत गयी थी। कथावाचक जी रोज जाते हैं।

चार दिन पश्चात् जब दद्दू सबेरे स्नान करने गये तो गंगापुत्र बोला—"दद्दू कल रात तो कथा-वाचक जी पकड़े गये।"

दद्दू किंचित् मुस्कराकर बोले—"अच्छा! क्यों ?"

"एक औरत को भगाये लिये जा रहे थे। पहिले तो इधर से नाव द्वारा रेती में गये। रेती पार करके धारा में पहुँचे। वहाँ नाव लगी थी उस पर बैठकर उस पार पहुँचे। बस जैसे ही उस पार पहुँचे—धर लिए गये। जान पड़ता है पहले से ही वहाँ आदमी लगे थे।"

"मैंने कहा था कि कोई काण्ड होने वाला है।'

"हाँ दद्दू आपने तो कहा था।"

दूसरे दिन जब दद्दू स्नान करने गये तो गंगापुत्र बोला—"लाओ दादा तुम्हारे चरण छूलें।

"क्यों-क्यों ?"

"हमें सब मालूम हो गया।"

"क्या मालूम हो गया।' दद्दू ने पूछा।

"जिन्होंने कथा-वाचक को पकड़ा वह आपके ही आदमी थे।"

दद्दू हँसने लगे।

"खूब ताड़ा दद्दू!"

"यह कथा कैसी रही ?"

"बहुत बढ़िया। वह औरत कौन थी।'

"अब इससे तुम्हें क्या मतलब! हमें किसी भले आदमी की बद-नामी नहीं करनी है।"

"कथा का असली पुण्य तो आपने लूटा।"

ददद्दू ने हँसकर पूछा—"सो कैसे ?

"एक अबला का उद्धार किया, एक भले आदमी की आबरू बचाई।"

"आबरू-बावरू तो खैर क्या बचाई! हाँ भागने नहीं पाई-बस इतना ही समझो।"

"यह भी थोड़ी बात नहीं है। क्या पुलीस में दे दिया।'

"नहीं मार-पीट कर छोड़ दिया। पुलीस में देने से सब जगह बात फैल जाती।"

"सुना मार तो ऐसी पड़ी है कि जन्म भर याद रहेगी। कथा-वाचक जी तो भाग ही गये।"

"अब भी क्या रह सकते थे? परन्तु हमारी कथा अच्छी रही।"

'बहुत बढ़िया! आपने तो कथा-वाचक जी की ही कथा बना दी।"

ददद्दू हँसने लगे।

कार्य कुशलता

(१)

शहर में रिश्वत का बाजार गर्म था। कोतवालसाहब तथा इन्चार्ज कोतवाली खूब चाँदी काट रहे थे। इसी कारण शहर में अनेक प्रकार के अपराध बढ़ रहे थे। स्थान-स्थान पर जुए के अड्डे स्थापित थे। इन अड्डों से पुलीस को मासिक आय होती थी। बदमाश तथा गुण्डे बात पड़ने पर अलानिया कहते थे कि पुलीस तो हमारी नौकर है। संध्या का समय था। नगर के एक बाजार में, जहाँ भले आदमियों के मध्य में वेश्याओं के घर भी थे खूब चहल पहल थी। जहाँ वेश्याएँ होती हैं वहाँ गुण्डे-बदमाश भी आते जाते रहते हैं। अतः इस समय वहाँ शहर का एक प्रसिद्ध गुण्डा अपने दो अनुचरों के साथ मँडला रहा था। कभी वह किसी तम्बोली की दुकान पर खड़ा हो जाता, कभी किसी वेश्या के मकान के सामने खड़ा होकर वेश्या से इशारेबाजी करता, कभी किसी दुकानदार से गप-शप करने लगता था। इस समय वह एक तम्बोली की दुकान पर खड़ा हुआ पान बनवा रहा था। इसी समय उस हल्के के चीफ साहब उधर से निकलें। गुण्डे को देख कर वह उसके पास पहुँचे और बोले—"क्या अकेले ही अकेले पान खाओगे गुरू!"

गुरू ने घूमकर चीफ साहब की तरफ देखा और कहा—"आओ! देना भई चीफ साहब को चार पान और एक सिगरट। कहाँ चले?"

"कहीं नहीं। ऐसे ही चले आये।"

"हरामखोरी को निकले होगे। शाम का समय है।"

चीफ साहब हँसकर बोले—"दुनियाँ ही हरामखोरी पर उतर आई है तब हम क्या उल्लू हैं जो हलालखोरी को पकड़े बैठे रहें।"

गुन्डा हँस कर बोला—"ठीक कहते हो।"

इसी समय सामने के छज्जे पर से एक युवती वेश्या ने तमोली को पुकार कर कहा—लछमन भइया। आठ पान और एक डिब्बी सिगरेट भेज दो।"

गुन्डा हँस कर बोला—"क्यों लछमन भइया तुम्हारी बहिन है?"

यदि और कोई ऐसी बात कह देता तो लछमन बिगड़ उठता; क्योंकि वह भी बदमाश था; परन्तु गुरू के सामने बोलने का साहस उसमें नहीं था। इस कारण वह मुस्कराकर बोला—"वाह गुरू ऐसी कहोगे! हमारी बहिन ससुरी काहे को है। और वैसे तो पराई औरत मां-बहिन के बराबर ही होती है।"

"यह कहो! आज कल तो बड़े साधू बने हुए हो। लेकिन एक बात तो बताओ यह कौशल्या किसी के पास नौकर है क्या?"

"अभी नई आई है। हमारी जान में तो अभी कहीं नौकर नहीं है।"

"तब भी ससुरी इतनी लम्बी-चौड़ी बात करती है। इसे किसी दिन ठीक करना है। ऊपर चढ़ जाऊँगा और दो सौ जूते गिन कर मारूँगा—सारी नखरेबाजी भूल जायगी। अभी हमें पहचानती नहीं है।"

"अब पहचान लेगी।" चीफ साहब बोले।

"और आप बोलियेगा नहीं। चीफ साहब यह बताये देता हूँ।"

"हमें क्या मतलब है। ससुरी को जूतों से मारो या चाहे जो करो।"

"और बोलना तो हम से पूछ लेना—हम तुम्हें कुछ पैदा करा देंगे।"

"अच्छी बात है। हमारा इतना ख्याल रखते हो—यही क्या कम है।"

"ख्याल रखना ही पड़ता है। तुम हमारे नौकर हो।"

चीफ साहब बेहयाई की हँसी हँसकर बोले—"ठीक कहते हो। हम पब्लिक के नौकर तो हई हैं।"

"पब्लिक जाय चूल्हे-भाड़ में। हम पब्लिक की हैसियत से थोड़े ही कहते हैं। हम तो इसलिए कहते हैं कि हम तुम लोगों को तनखाह देते हैं—हर महीने कलदार!"

"अच्छा ऐसा ही सही—जैसे तुम खुश रहो।"

यह कहकर चीफ साहब सिगरेट धकधकाते हुए चल दिये।

(२)

सुपरिन्टेडेन्ट पुलीस (कप्तान साहब) मि० राबिन्सन एक अच्छे अफसर समझे जाते थे। न्यायप्रिय आदमी थे। हिन्दुस्तानी भाषा बहुत साफ बोलते थे। सहसा यह भान नहीं होता था कि कोई यूरोपियन बोल रहा है।

प्रातःकाल के नौबजे थे। कप्तान साहब शहर के दो रईसों से वार्तालाप कर रहे थे। एक रईस महोदय कह रहे थे—"हुजूर के होते हुए अगर शहर की यह हालत हो तो बड़े ताज्जुब की बात है।"

"हमको इस बात का खुद बहुत खयाल है और हम जल्दी ही कोई इन्तजाम करते हैं।"

"पुलीस के अमाल से हुजूर की बदनामी होती है और हुजूर की बदनामी सुनकर हम लोगों को बड़ी तकलीफ पहुँचती है क्योंकि हम लोग जानते हैं कि हुजूर बहुत इन्साफ-पसन्द और नेक हाकिम हैं।"

"शुक्रिया! हम स्काटलैंड यार्ड (लंदन की कोतवाली) के आदमी हैं पंडित साहब! स्काटलैंड यार्ड अपनी ईमानदारी और कारगुजारी के लिए दुनिया भर में मशहूर है।" कप्तान साहब ने कहा।

"ऐसे ही हाकिमों की तो यहाँ जरूरत है।"

"लेकिन यहाँ की पुलीस से हम परेशान हैं। कान्स्टेबिल से लेकर

डी० एस० पी० तक सब रिश्वतखोर हैं। मेरा मतलब है कि ज्यादा तादाद में रिश्वतखोर हैं। बहुत कम आदमी ऐसे हैं जो रिश्वत नहीं लेते।"

"हुजूर तो खुद ही सब बात जानते हैं, हुजूर को हम क्या बतावेंगे। लेकिन अगर हुजूर पुलीस की मदद से कोई कार्यवाई करना चाहेंगे तो ठीक न होगा क्योंकि पुलीस का शायद ही कोई आदमी इस काबिल निकले कि जिसके भरोसे हुजूर कोई काम करके कामयाबी हासिल कर सकें।"

"यह बात हम भी समझते हैं। देखा जायगा।"

"गुन्डे अलानिया भले आदमियों की आबरू लेने को तैयार हो जाते हैं और पुलीस खड़ी देखा करती है। अभी परसों का मामला है। शहर का एक गुन्डा जिसे छन्नो गुरू कहते हैं एक तवायफ के कमरे पर चढ़ गया और उसे मारते मारते बेदम कर दिया। उसने चौकी पर रिपोर्ट की तो चीफ साहब ने उलटे उसी पर इल्जाम रख कर उससे पचास रुपये ले लिए। दूसरे दिन वह बेचारी यहाँ से भाग गई। यह हालत है। हालांकि वह रंडी थी लेकिन हुजूर, जुल्म तो किसी पर भी न होना चाहिए, चाहे वह रंडी हो या शरीफ! इसी तरह गुन्डों के हौसले बढ़ जाते हैं और वह शरीफों पर भी हाथ साफ करने लगते हैं।"

"बिल्कुल दुरुस्त है। हम सब इन्तजाम जल्दी ही कर देंगे। आप इतमीनान रक्खें।"

"हुजूर से ऐसी ही उम्मीद है।"

"लेकिन इस बात का जिक्र किसी से मत कीजिएगा।"

"ऐसा कभी हो सकता है। हुजूर की बात किसी से भी नहीं कही जायगी।"

"तो बस आप खातिर जमा रखिए हम अच्छी तरह इन्तजाम करेंगे हम अपनी बदनामी नहीं बरदाश्त कर सकते।"

"बेशक! कोई भी नेक आदमी अपनी बदनामी बरदाश्त न करेगा। अच्छा अब इजाजत हो—हुजूर का बहुत वक्त लिया।"

(३)

रात के दो बजने का समय था। इसी समय एक तङ्ग तथा अँधेरी गली से एक मुसलमान स्त्री बुर्के से अपना शरीर तथा मुख छिपाये निकली। इस गली के सामने सड़क पर दो कान्स्टेबिल भाले लिए एक बन्द दुकान के चबूतरे पर बैठे थे। बुर्कापोश स्त्री गली से निकल कर उनकी ओर आई और एक मुसलमानी मुहल्ले का नाम लेकर बोली, "—किधर है?"

कान्स्टेबिल ने पूछा—"तुम वहाँ रहती हो?"

"हाँ!"

"यहां इतनी रात को क्यों आई थी।"

स्त्री कुछ क्षण विचार कर के बोली—"अब यह क्या करोगे पूछ के रास्ता बता दो।"

"हूँ! तब तो मामला कुछ गड़बड़ है। अब तो तुम्हें बताना पड़ेगा।"

स्त्री ने खुशामद की लेकिन कान्स्टेबिल किसी तरह न माने। स्त्री बोली—"अच्छा सब बता दूँगी।"

दोनों कान्स्टेबिल उसे लेकर चौकी पहुँचे। चीफ साहब पड़े सो रहे थे उन्हें जगाकर सब वृतान्त कहा—"सच बताओ।"

स्त्री बोली—"यहाँ एक आदमी से मेरा ताल्लुक है उसी के पास आई थी।"

"हूँ—जिना करके आई थी। अच्छा इसे बन्द करो—सबेरे थाने पर पेश करेंगे।"

स्त्री ने खुशामद की, पर चीफ साहब न माने। अन्त में उसने अपने हाथ से एक सोने की चूड़ी उतार कर दी तब चीफ साहब राजी हुए।

स्त्री आगे चली। कुछ फासले पर उसे एक और कान्स्टेबिल मिला।

उसने भी उसे टोका। स्त्री ने उससे भी यही कहा कि वह अपने प्रेमिका से मिलने आई थी।

कान्स्टेबिल बोला—"चलो थाने पर।"

"थाने पर न ले जाओ-यह लो।"

यह कहकर स्त्री ने पांच रुपये कान्स्टेबिल की ओर बढ़ाये। कान्स्टेबिल ने एक लप्पड़ स्त्री के मुख पर मारकर कहा—"रिश्वत देती है हरामजादी। हम रिश्वत लेते हैं? ऐसी रिश्वत हम हराम समझते हैं-चल थाने।"

कान्स्टेबिल स्त्री को थाने पर ले गया। दारोगा जी को जगा कर उनके सामने स्त्री को पेश किया। वहाँ भी स्त्री ने वही कथा सुनाई। दारोगाजी ने उसे हवालात में बन्द करने का हुक्म दिया। स्त्री ने दो सोने की चूड़ियाँ उतार कर दारोगा जी को दीं।

दारोगा जी चूड़ियां देखकर बोले—"सोने की ही हैं न, कलई तो नहीं है?"

"हुजूर के साथ ऐसा धोखा नहीं कर सकती, एक दिन का काम थोड़ा ही है।" यह कहकर स्त्री चल दी।

स्त्री के जाने के बीस मिनट बाद ही पुलिस कप्तान मि० राबिन्सन ने थाने पर छापा मारा। उसी समय एक डी० एस० पी० ने चौकी पर छापा मारा। दोनों जगह चूड़ियाँ बरामद हुईं। चीफ कान्स्टेबिल तथा थानेदार साहब गिरफ़्तार कर लिये गये।

चूड़ियों के भीतर की ओर कप्तान साहब के नाम के प्रथमाक्षर अत्यन्त महीन खुदे हुए थे।

दूसरे दिन कप्तान साहब ने अपने बंगले पर उस कान्स्टेबिल को तलब किया जिसने स्त्री के लप्पड़ मारा था। उस से कप्तान साहब बोले "हमने तुमको चीफ कान्स्टेबिल बनाया। ऐसी ही ईमानदारी से काम करते रहना।"

कान्स्टेबिल ने सेल्यूट कर के कहा—"हुजूर के एकबाल से हमेशा ऐसी ही ईमानदारी और वफादारी से काम करूंगा।"

कान्स्टेबिल चलने लगा तो कप्तान साहब बोले—"लेकिन एक बात का खयाल रखना। आयन्दा किसी औरत के इतने जोर का लप्पड़ मत मारना।"

कान्स्टेबिल चला गया। उसके जाने के बाद कप्तान साहब अपनी पत्नी से जो उनके निकट ही बैठी थी अँग्रेजी में बोले—"बड़े जोर का लप्पड़ मारा था इसने मेरा गाल अब तक दर्द कर रहा है।"

मेम साहब हँस कर बोलीं—

"ताकतवर आदमी है। आयन्दा जरा बचकर काम करना।"

कप्तान साहब हँस कर बोले—"अगर दूसरा लप्पड़ मारता तो मुझे वहीं अपने को प्रकट कर देना पड़ता।"

"तब तो इसकी शकल उस समय देखने के योग्य होती।"

"बेचारा खौफ से अधमरा हो जाता।"

दोनों खिलखिला कर हँसने लगे।

वोटर

सीरामऊ एक मध्यम श्रेणी का गाँव है। गाँव में ठाकुर-ब्राह्मणों की बस्ती अधिक है—कुछ अछूत जातियों के घर हैं, कुछ अहीर हैं—वैश्यों के दो-चार घर हैं और चार-पाँच घर मुसलमानों के हैं। इन मुसलमानों का रहन-सहन अधिकांश हिन्दुओं जैसा है। यहाँ के मुसलमानों को अपने मुसलमान होने का ज्ञान तो है परन्तु वे केवल इतना जानते हैं कोई खुदा है जो इस दुनिया का मालिक है। मुहम्मद साहब उसके नवी हैं। मुहम्मद साहब की शिफारिश से अल्लह मियाँ गुनहगारों के गुनाह माफ कर देगा। बिहिश्त-दोजख, रोजा-नमाज, गुनाह साहब का इन्हें बहुत ही स्थूल ज्ञान है। वे यह तो समझते हैं कि मुसलमानी मजहब हिन्दू मजहब के कुछ खिलाफ है। मुसलमानी मजहब में बड़ी छूट है—इतने झगड़े नहीं हैं जितने हिन्दू मजहब में। इसलिए वे हिन्दुओं से अधिक स्वाधीन हैं। हिन्दुओं के प्रति उनका पार्थक्यभाव तो है परन्तु विरोध भाव नहीं है; क्योंकि हिन्दू अधिक संख्या में होते हुए भी उनसे मित्रता का व्यवहार करते हैं।

रात के समय जब इन मुसलमानों को एक साथ बैठने का अवसर मिला तो गप्पें लड़ने लगीं। एक बोला—"आज कल बोटन का बड़ा जोर है।"

"हाँ परसों हम सन्तोखीपुर की बजार गये थे वहाँ कुछ मुसलमान भाई पूछते थे कि तुम किसे वोट दोगे—हमें कुछ मालूम नहीं था, सो

हमने कह दिया जिसे आप लोग देंगे। और क्या कहता ?" करीम नामक व्यक्ति बोला।

"ठीक है। हमने तो एक दफा वोट डाला था, बहुत दिन हुए। अच्छी तरह याद नहीं कि कैसा क्या हुआ था—डिस्टक बोरड की तरह होते होंगे।"

"जब बखत आवेगा तब सब मालूम हो जायगा।"

"हमारा तो गाँव जिसे देगा—उसी को हम भी देंगे। गाँव के खिलाफ थोड़ा ही जा सकते हैं।"

"ठीक बात है गांव के खिलाफ चलकर रहेंगे कहाँ ?"

"सुना है—खुदा जाने सच है कि झूठ कि एक मुसलमानों की तरफ से खड़े होंगे और एक कांग्रेस की तरफ से।"

करीम के कान खड़े हुए, उसने पूछा—"यह क्या कहा—काँग्रेस की तरफ से ?"

"हाँ सुना है कि एक मुसलमान तो मुसलमानों की तरफ से खड़ा होगा और एक काँग्रेस की तरफ से।"

"तो भइया एक बात है गाँव वाले तो काँग्रेस वालों को देंगे।"

"हाँ सो तो बनी बनाई बात है।"

"तब तो हमारी मुस्किल है। हमें मुसलमानों की तरफ़ वाले को देना चाहिए।"

"हाँ—यह भी ठीक कहते हो।"

"अरे तो इस मामले में हिन्दू लोग जोर नहीं देंगे।"

"हाँ जोर तो न देना चाहिए। हम मुसलमानों का मामला हम मुसलमान जानें। हम लोग तो उनके मामले में दखल नहीं देते।"

"मगर एक बात जरूर है—काँग्रेस का बड़ा जोर है।"

करीम ने पूछा—"काहे चचा तो हिन्दू तो किसी हिन्दू को वोट देंगे।"

"हाँ सो तो देंगे ही।"

"तब तो हमें मुसलमान को वोट देना पड़ेगा। हम हिन्दू को वोट काहे को दें।"

प्रौढ़ चचा हँस कर बोला—"अरे तुम समझे नहीं ! हम तो मुसलमान को ही देंगे।"

"तुमने कहा न कि काँग्रेस की तरफ से खड़ा होगा।"

"होयगा वह भी मुसलमान ही हिन्दू नहीं होगा।"

"क्या मतलब मैं समझा नहीं।"

"तुम गावदी ही रहे। अरे भइया दो मुसलमान खड़े होंगे, एक मुसलमीन की तरफ से और एक काँग्रेस की तरफ से।"

"अच्छा काँग्रेस की तरफ से भी मुसलमान ही खड़ा होगा।"

"हाँ !"

"तब फिर क्या खौफ है। गाँव वाले जिस मुसलमान को कहेंगे, उसे वोट दे देंगे।"

"सो तो करना ही पड़ेगा।"

"गाँव के खिलाफ नहीं जा सकते।"

"यही तो मुस्किल है।"

(२)

चुनाव का दिन निकट आ गया। एक दिन एक मुसलमान कान्स्टेबिल गश्त करता हुआ सीरामऊ भी आ निकला। मुसलमानों ने उसका स्वागत किया। खाना-वाना खाने के बाद मु० कान्स्टेबिल बोला—"तुम किसे वोट देओगे ?"

"अब हम यह सब क्या जानें ! जिसे आप कहें उसे दे दें।"

"मुसलिम लीग के आदमी को देना।"

"मुसलिम लीग क्या है ?"

"मुसलिम लीग मुसलमानों की एक जमात है। वह पाकिस्तान बनवायगी।"

"पाकिस्तान क्या ?"

"पाकिस्तान माने मुसलमानी राज ! कांग्रेस माने हिन्दू—राज।"

"अच्छा।"

"हाँ ! हिन्दुओं के बहकावे में न आजाना।"

"लेकिन एक बात तो बताओ खाँ साहब ! जब कांग्रेस-राज हिन्दू-राज है तब मुसलमान उसकी तरफ से कैसे खड़े होते हैं ?"

"यह उनकी अकल और क्या कहा जाय। मुसलमान होकर हिन्दू-राज पसन्द कर रहे हैं।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात है।"

"खैर ! ताज्जुब की यह दुनिया ही है। तुम मुसलिम लीग के आदमी को वोट देना। उनका नाम.....है। याद रखना भूल न जाना।"

सब ने तीन-चार बार नाम को रट कर याद करने के पश्चात् कहा—"यह अच्छा बता दिया खाँ साहब !"

प्रौढ़ व्यक्ति बोला —"मगर दारोगा जी तो हिन्दू हैं, वह तो नाराज न होंगे।"

"वह इस मामले में नहीं बोल सकते।"

"अच्छा !"

"हाँ ! इनमें इतनी हिम्मत कहाँ ? अभी कोई मुसलमान दारोगा होता तो देखते। यह हिम्मत मुसलमान में ही होती है। हाँ तो याद रखना।"

"याद रक्खेंगे खाँ साहब !"

"गाँव वाले हिन्दू बहकावें तो उनकी बातों में मत आजाना !"

"अब जब आपका हुकुम लग गया तब गाँव वाले चाहे जो कहें।"

खाँ साहब तो यह पट्टी पढ़ा कर चल दिया। इधर इनमें खिचड़ी पकने लगी।

"अब आयी मुसीबत !"

"काहे !"

"खाँ साहब—मुसलिम—वह क्या कहा था—याद नहीं आता।"

"कुछ लीग-लीग कहते थे।"

"हाँ वही मुसलिम लीग! खाँ साहब उसके आदमी के लिए कह गये हैं, गाँव वाले कांग्रेस वाले को कहेंगे।"

"हाँ यह तो है।"

खाँ साहब पुलिस के आदमी हैं, दुश्मनी बाँध लेंगे।"

"और क्या।"

"इधर गाँव वालों की बात न मानेंगे तो यह बिगड़ेंगे। रात-दिन इन्हीं के साथ रहना है।"

"यही तो मुस्किल है।"

दूसरे गाँव के ठाकुर मुखिया ने इन सबको बुलवाया। इनके पहुँचने पर उसने पूछा—"कहो अल्लाहबकस मियां—किसे वोट देने का इरादा है।"

"अब हम क्या बतावें मुखिया—जिसे कहो उसे देदें।"

"भई हमारी राय तो——को देने की है।"

"खाँ साहब मुसलिम लीग वाले को देने कह गये हैं।"

"कौन खाँ साहब?"

"अरे वही थानेवाले।"

"अच्छा वह मियाँ! उनको कहने दो।"

"पुलिस के आदमी हैं।"

"तो क्या करेंगे। न जाने कहाँ के रहने वाले हैं। साल-छः महीने में बदलकर चले जायेंगे--कौन उनकी यहाँ जिमींदारी है।"

"हाँ यह तो आप ठीक कहते हो।"

"और हमारे साथ तुम्हें जिन्दगी काटनी है।"

"हाँ मुखिया दाऊ! मरने-जीने के साथी तो आप लोग ही हैं।"

"तो बस यह समझ लेओ।"

"सो हम आप से बाहर नहीं हैं जिसे हुकुम देओगे उसे देंगे।"

"बस यही पूछना था—अच्छा-यह नाम याद रखना—समझे?"

"सुनो मियाँ—यह नाम याद कर लो ।" एक ने अन्य से कहा ।

"याद है और भूल जाएँगे तो चलते बखत मुखिया दाऊ से पूछ लेंगे ।"

"और क्या । और वोट डालने की जगह भी आदमी रहेंगे—उनसे पूछ लेना ।"

"हाँ ! वह सब हो जायगा ।"

यह कहकर वे लोग चल दिए ।

(३)

रास्ते में सब बातें करते हुए चले - अल्लाहबख्श बोला--"गाँव के खिलाफ कैसे जा सकते हैं ।"

"और यह बात मुखिया ने ठीक कही--खाँ साहब तो चले जाएँगे"

"हाँ ये लोग तो बदलते ही रहते हैं ।"

"हमें तो गाँव के साथ चलना है, जिनका हमारा हर बखत का साथ है ।"

"सो तो हई है ।"

परन्तु करीम को ये बातें नहीं जँच रही थीं । उसका लक्ष्य केवल यह था कि मुसलमान भाइयों के खड़े किए हुए आदमी को देना चाहिए । उससे मुसलमानी राज हो जाएगा । अतः वह गुम-सुम चल रहा था इन लोगों की बातों में योग नहीं दे रहा था ।

अन्त को पोलिंग दिवस आ गया । मुसलिम लीग तथा कांग्रेस के आदमी घूमने लगे । ये सब लोग भी वोट डालने चले । दोनों पक्षों से हाँ-हाँ करते हुए हँसते-खेलते जा रहे थे—केवल करीम गहरे विचार में था । वह अभी कुछ निश्चय नहीं कर पाया था कि क्या करे ।

पोलिंग स्टेशन पर पहुँचने पर करीम ने देखा कि एक ओर लीग का तम्बू लगा है और दूसरी ओर कांग्रेस का । कांग्रेस के तम्बू में केवल

पानी पीने का इन्तजाम है—मुसलमानी तम्बू में पलेटें चल रही थीं। वह अपने साथियों से बोला—"हम जरा उधर घूम आवें! तुम लोग यहीं मिलना।"

उसके साथी दोनों तम्बुओं के बीच में टहल रहे थे, कभी लीग के तम्बू को देखते थे कभी कांग्रेस के। जिस ओर के आदमी बुलाते थे उस ओर मुस्करा कर कह देते थे—"आ जाएंगे! ऐसे जरा टहल रहे हैं।"

इधर करीम ने एक पलेट साफ की, पानी पिया और पान खाया।

इसी समय एक वालंटियर बोला—"चलो तुम्हारा वोट डलवादें।"

करीम बोला—"चलो!"

रास्ते में सोचता जा रहा था कि कहदेंगे जबरदस्ती पकड़ ले गये।

जब अन्दर पहुँचा तो कलेजा धड़कने लगा। सुना था अन्दर डिप्टी साहब होंगे | पुलिस होगी। पुलिस को भी देखा, डिप्टी साहब भी जरूर ही होंगे। मुँह सूख गया।

जिस समय उससे प्रश्न किया गया कि किसे वोट देओगे तो वह दोनों नाम भूल गया। वह भयभीत नेत्रों से मुँह ताकने लगा।

फिर प्रश्न किया गया—"किसे वोट देओगे! जल्दी बोलो।"

करीम का दिमाग चकराने लगा। इसी समय एक ने राष्ट्रीय मुसल मान का नाम लेकर कहा—को वोट दोगे?

करीम ने प्राण ऐसे पाये! जल्दी से बोला—"हाँ! हाँ! इन्हीं को।"

क्लर्क ने क्रास लगाकर वोट-बक्स के अन्दर डाल दिया।

वह लौटने लगा तो एक मुसलिम लीगी बोला—"तुमने तो कांग्रेस के मुसलमान को वोट दिया।"

"म्याँ कुछ बोलो नहीं।"

"तुमने बताया भी नहीं। हम भूल गये।"

"बड़े गँवार हो।"

बाहर आकर जब अपने साथियों से मिला तो उन्होंने पूछा—

"किसे वोट दिया?"

करीम बोला—"कुछ पूछो नहीं। हम घबड़ा गये।"

"वोट किसे दिया।"

"कांग्रेस के आदमी को।"

"ठीक है! गये मुसलिम लीग के आदमी के साथ और वोट कांग्रेस को दिया!"

"हाँ! हाँ! लीग वाले ज़बरदस्ती पकड़ ले गये। वहाँ जाकर हमने कांग्रेस के मुसलमान को वोट दिया।"

परन्तु उसकी बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया। करीम को यह अफसोस है कि उसका वोट मुस्लिम लीग को नहीं मिला और अन्य लोगों को यह सन्देह है कि उसने मुसलिम लीगी उम्मीदवार को वोट दिया।

मद

(१)

रायबहादुर केशवप्रसाद उन आदमियों में से थे जिनका विश्वास था कि संसार में धन ही सब कुछ है। जिसके पास धन है वही श्रेष्ठ है और वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है।

रायबहादुर साहब का परिवार आठ-दस आदमियों का परिवार है। तीन पुत्र, दो पुत्रियाँ, पत्नी, विधवा चाची इत्यादि से परिवार भरा-पूरा है। बड़ा लड़का कृष्णप्रसाद डिप्टी कलक्टर है और बाहर रहता है।

रात के आठ बजे थे। रायबहादुर साहब अपने कुछ मित्रों तथा खुशामदियों सहित अपने विशाल भवन के एक सुसज्जित कमरे में बिजली की अंगीठी के सन्मुख बैठे थे।

"आज बड़ी सर्दी है।" एक सज्जन ने क़हा।

"हाँ आज कल से भी अधिक है।"

"ऐसे में सरकस देखने चलना तो मुसीबत है।"

"न चलियेगा तो टिकट रद्दी हो जायँगे।"

"खैर चलेंगे तो, परन्तु आनन्द नहीं आयगा।"

"शाल-वाल लेलीजिएगा। हम तो तूश लेकर आये हैं।" एक ने कहा।

"जी मैं कम्बल लेकर आया हूँ ! यह न समझियेगा कि आपके पास तूश है। वह मोल में भारी हैं तो यह तोल में भारी !"

सब लोग हँसने लगे रायबहादुर साहब बोले—"यह बराबरी अच्छी दिखाई। भारी दोनों हैं—एक मोल में तो दूसरा तोल में ?"

"कहने को चाहे जो कहिए—तूश और मलीदा और अलवान—परन्तु जो आनन्द कम्बल और रजाई में आता है वह किसी में नहीं है।"

रायबहादुर बोले—"तूश वगैरह हल्के होते हैं और साथ ही काफी गर्म भी इसलिए इनका मूल्य है। रजाई और कम्बल ओढ़े चलना-फिरना कठिन होता है।"

"हाँ बस इतनी ही सुविधा है। रात को तूश ओढ़ कर सोइये तो पता लग जाय ! रात में तो लिहाफ और कम्बल ही काम देते हैं।"

"गधे हो ! तूश इत्यादि का उपयोग रात में ओढ़कर सोने में नहीं होता।" रायबहादुर ने कहा।

"क्या-क्या गप लोग हाँक देते हैं। एक साहब उस दिन कह रहे थे कि पहले ऐसे तूश होते थे कि यदि जमे हुए घी के कुप्पे पर लपेट दीजिए तो घी पिघल जाता था।"

"हाँ तो क्या हुआ ! ऐसे तूश बनते रहे होंगे।"

"ऐसा कोई कपड़ा बन ही नहीं सकता। तूश में गर्मी कहाँ से आई ?"

"तूश में गर्मी नहीं होती तो शरीर को गर्म क्यों रखता है।"

"शरीर को तो आप के अन्दर निरन्तर उत्पन्न होती हुई गर्मी गर्म रखती है। ऊन केवल इतना करता है कि आपके शरीर की गर्मी को संचित रखता है बाहर की ठंडी हवा उसे नहीं घसीट पाती, क्योंकि ऊन गर्मी का वाहक न होकर रोधक होता है।"

"यह बात तो हमारी कुछ समझ में नहीं आती—हम तो यह जानते हैं कि ऊन गर्म होता है।"

"उसका यही तात्पर्य है। जितने पदार्थ गर्मी के अवरोधक होते हैं

वे गर्म कहे जाते हैं। यद्यपि उन पदार्थों में गर्मी-वर्मी कुछ नहीं होती। यह विज्ञान का मत है।"

"होगा! हम इज्ञान-विज्ञान क्या जानें। हम तो सीधी बात जानते हैं।"

इन्हीं बातों में पौने नौ का समय हो गया। एक महाशय बोले—"समय हो गया—अब चलना चाहिए।"

"हाँ अब समय हो गया।"

राय बहादुर साहब ने नौकर से कार मँगवाने के लिए कहा और स्वयं कपड़े पहनने चले गये।

(२)

राय बहादुर साहब फर्स्टक्लास में अपने तीनों मित्रों सहित विराजमान थे। खेल आरम्भ हो चुका था।

कुछ देर बाद एक उन्नीस-बीस वर्ष की श्वेताङ्ग युवती घुटनों तक फूला हुआ श्वेत घाँघरा सा और उसके ऊपर श्वेत रेशम की एक जाकट सो-बाहें खुली हुईं—पहने हुये आई और दो दौड़ते हुए घोड़ों की पीठ पर अपने कर्तब दिखाने लगी। युवती बहुत सुन्दरी दिखाई पड़ती थी। राय बहादुर साहब स्थिर दृष्टि से उसका कार्य देखते रहे।

जब वह अपना खेल दिखाकर चली गई तब रायबहादुर साहब को मानो होश सा आया। पास बैठे हुए एक मित्र से बोले—"बड़े गजब की लड़की है शरीर में मानो हड्डी हैं ही नहीं।"

"जी हाँ! बड़ा लोचदार शरीर है और नख-शिख भी सुन्दर है।"

"क्या कहने हैं। हूर की बच्ची है।" दूसरे मित्र ने कहा।

"इसको बहुत तनख्वाह मिलती होगी।"

"हाँ! इसमें क्या संदेह है।"

"भला कितनी मिलती होगी?" रायबहादुर साहब ने पूछा।

"हजार-पाँचसौ तो मिलते ही होंगे।"

"हजार-पाँचसौ में तो बड़ा अन्तर है यार!" तीसरे मित्र ने कहा।

"मेरा मतलब है कम से कम पाँच-सौ और अधिक से अधिक एक हजार!"

"कल जरा पता लगवाना चाहिए।" रायबहादुर साहब बोले।

"क्या करोगे पता लगवा कर?"

रायबहादुर साहब किंचित् मुस्कराकर बोले—"तबियत!"

"अच्छा जान पड़ता है तबियत आ गई। लेकिन यहाँ आपकी दाल नहीं गलेगी।"

"क्या कहते हो दाल नहीं गलेगी? रुपया वह चीज है कि पत्थर को गला देता है—दाल तो दाल!"

"यहाँ रुपया काम नहीं देगा।"

"रुपया हर जगह काम देता है और यहाँ भी काम देगा।"

"मुझे तो सन्देह है।"

"अच्छा कुछ शर्त बद लो!" रायबहादुर साहब बोले।

"शर्त-वर्त बदना तो अपनी समझ में नहीं आता।"

"मैं शर्त बदता हूं।" तीसरे सज्जन बोल उठे।

"क्या शर्त बदते हो।"

"जो आपका जी चाहे।"

"हजार रुपये की शर्त रही।"

"रुपये की शर्त्त तो व्यर्थ है। देखिये यदि हार जाँय तो यह कहना छोड़ दें कि रुपया सब कुछ कर सकता है।"

"और जो तुम हार गये?" रायबहादुर ने पूछा।

"तो मैं यह मान लूंगा कि वाकई रुपया सब कुछ कर सकता है।"

"जरा समझ-बूझ कर शर्त्त बदो। थियेटर-सर्कस की औरतों पर ऐसी शर्त बदना मूर्खता है। ये तो पैसे से हस्तगत की जा सकती हैं।"

"हाँ—क्या हुआ। परन्तु कम से कम कोई हिन्दुस्तानी तो इसे पैसे

के बल से भी हस्तगत नहीं कर सकता—ऐसा मेरा विश्वास है और इसीलिए मैं शर्त बद रहा हूँ।"

"तो रही शर्त ?" रायबहादुर साहब ने पूछा।

"हाँ रही। जो कह दिया सो कह दिया उसको अब नहीं बदलूँगा।"

"तो बस ठीक है। कितना लेगी ससुरी हजार, दो हजार, चार हजार दस हजार !"

"बस ! दस हजार तक का बजट रक्खा है।"

"बजट तो और बढ़ सकता है। अब तो शर्त बदी है न ! चाहे जो खर्च हो जाय। परन्तु इतने से अधिक खर्च नहीं होगा।"

"अच्छी बात है।"

इसके पश्चात् खेल देखने लगे। खेल समाप्त होते होते श्वेताङ्ग लड़की एक बार पुनः दूसरी ड्रेस में आई जो पहले से भी अधिक आकर्षक था। इस बार उसका खेल समाप्त होने पर रायबहादुर साहब ने खूब ताली बजाई। जोर से चिल्ला कर 'एक्सीलेन्ट' 'ग्रेण्ड' इत्यादि शब्दों का उच्चारण किया। श्वेताङ्ग लड़की एक बार इनकी ओर देख कर मुस्करा दी ! रायबहादुर साहब कृतकृत्य हो गये।

(३)

दूसरे दिन रायबहादुर साहब के गए छूटे। तीन चार दिन में लड़की से रायबहादुर साहब का परिचय हो गया। लड़की एक अंग्रेजी होटल में ठहरी हुई थी। लड़की के साथ लड़की का पिता तथा बड़ा भाई भी था। ये तीनों 'स्पेनिश' (स्पेन-देशीय) थे। लड़की का नाम ईसाबेला था। बाप का नाम पीडो तथा लड़के का वेलेनटीनो था। वेलेनटीनो भी सर्कस का खेलाड़ी था, पिता घोड़ों की देख-रेख का काम करता था।

रायबहादुर साहब इन लोगों से एक बार नित्य मिलते थे। कभी

वह स्वयं होटल जाते थे और कभी ये लोग रायबहादुर के घर आया करते थे। रायबहादुर साहब इनकी बड़ी खातिर करते थे। फूलों के गुलदस्तों, फल, मिठाई तथा शृङ्गार सामग्री से इन लोगों को प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहे थे। ये लोग भी रायबहादुर को बहुत मानने लगे।

रायबहादुर साहब की कार इनके लिए हर समय उपस्थित रहती थी। रायबहादुर साहब स्वयं भी इन्हें घुमाने-फिराने ले जाया करते थे।

एक दिन सर्कस की छुट्टी थी। रायबहादुर ईसाबेला को कार पर लेकर घूमने चलें। उस दिन ईसाबेला अकेली थी। रायबहादुर साहब भी अकेले ही थे और स्वयं ही कार को 'ड्राइव' कर रहे थे।

ईसाबेला अगली सीट पर रायबहादुर साहब के बगल में बैठी हुई थी।

नगर के बाहर छावनी की ओर जाकर रायबहादुर ने एक निर्जन स्थान पर कार रोक दी। अन्धकार हो गया था।

ईसाबेला ने पूछा—"क्या बात है।"

रायबहादुर साहब ने कहा—"कुछ नहीं! जरा देर यहाँ रुककर चलेंगे।"

कुछ क्षण मौन रहकर रायबहादुर ने कहा—"तुम सर्कस की नौकरी क्यों करती हो ईसाबेला?"

"मुझे शौक है।"

"बड़ा खतरनाक काम करती हो। जरा चूकने से प्राण जा सकते हैं।"

"यही तो आनन्द है।"

"यह आनन्द का विषय नहीं, भय का है।"

"मुझे तो तनिक भी भय नहीं लगता।"

ईसाबेला ने हँस कर कहा।

"जब तक तुम खेल करती रहती हो मेरी छाती धड़कती रहती है।"

"वह कुछ नहीं! मुझे उसी में आनन्द आता है।"

"तुम सर्कस की नौकरी छोड़ दो।"

"क्यों ?"

"जितनी तनख्वाह तुम वहाँ पाती हो उतनी मैं तुम्हें दूंगा।"

ईसाबेला हंस पड़ी। बोली—"तनख्वाह की क्या बात है! मुझे अपनी कला से प्रेम है।"

"तो अब तुम कला का प्रेम छोड़ कर मुझ से प्रेम करो।" यह कहकर रायबहादुर साहब ने ईसाबेला के गले में अपनी बाईं बाँह डाल दी और उसका चुम्बन किया। ईसाबेला ने पीछे सरक कर एक तमाचा रायबहादुर साहब के गाल पर मारा और स्पेनिश भाषा में न जाने क्या कहने लगी।

रायबहादुर साहब अंग्रेजी जानते थे, स्पेनिश भाषा नहीं जानते थे अतः वह नहीं समझ सके कि ईसाबेला क्या कह रही है, परन्तु इतना अनुमान लगा लिया कि सम्भवतः गालियाँ दे रही है।

रायबहादुर साहब ने अपनी बाँह खींच ली और झट अपनी जेब से चेक बुक निकाली, फाउन्टेन पेन निकाला और चेक बुक खोल कर वह बोले—"बताओ तुम्हें कितना रुपया चाहिए—बताओ उतना लिख दूँ।"

ईसाबेला ने एक तमाचा और जड़ा। इस बार वह अँग्रेजी में बोली "बेवक़ूफ गँवार हिन्दुस्तानी। समझता है मैं रुपया पैदा करने के लिए सर्कस की नौकरी करती हूँ। वह मेरी कला है, मेरा शौक है। लाख रुपये के लिए भी मैं उसे नहीं छोड़ सकती।"

यह कहकर ईसाबेला कार से उतर पड़ी।

रायबहादुर साहब—"क्यों! क्यों!" कहते रहे। ईसाबेला पैदल ही चल दी। कुछ दूर चलने पर एक खाली तांगा मिल गया, उसे लेकर वह चली गई।

रायबहादुर साहब कुछ क्षण बैठे सोचते रहे तत्पश्चात् कार लेकर चल दिये।

दूसरे दिन रायबहादुर साहब ने देखा कि उनके दिये हुए सब उपहार वापस आगये, उनके साथ में एक चिट भी थी। उसमें केवल इतना लिखा था– "अब मुझ से मिलने का प्रयत्न मत करना !" ईसाबेला।

उस दिन संध्या समय रायबहादुर साहब ने मित्र-मण्डली में कहा—"मैं शर्त हार गया ! निस्सन्देह रुपये से सब चीजें प्राप्त नहीं हो सकतीं।"

हिसाब-किताब

(१)

पं० रामशरण मध्यश्रेणी के आदमी थे। अनाज की आढ़त का काम करते थे। इनका एक विवाह योग्य लड़का था। यद्यपि उसके कई सम्बन्ध आये, पर पण्डित जी को वे पसन्द न हुए। पण्डित जी लोभी आदमी थे, वह किसी धनाढ्य की कन्या से लड़के का विवाह करना चाहते थे।

जब कोई सम्बन्ध करने आता था तो पहले आप उसकी हैसियत इत्यादि पूछते थे तत्पश्चात् प्रश्न करते थे कि लड़की के कितने भाई-बहिन हैं। भाई-बहिनों की संख्या सुनकर यह अनुमान लगाते थे कि उनकी भावी पुत्रबधु के हिस्से में कितना द्रव्य आयगा। जब हिसाब लगाते तो वह हिसाब कुछ अधिक उत्साह-प्रद न होता था। इस कारण वह सम्बन्ध करना अस्वीकार कर देते थे। अन्ततोगत्वा एक दिन एक महाशय आये। उनके ठाठ-बाट देखकर पण्डित जी ने अनुमान लगाया कि यह धनाढ्य व्यक्ति मालूम होता है। वार्त्तालाप आरम्भ हुआ। पंडित जी ने पूछा "आपकी आमदनी क्या है?"

"मेरी आमदनी पाँच-छः सौ रुपये मासिक की है।"

पण्डित जी ने सोचा जैसे ठाठ-बाट हैं वैसी आय नहीं है।

"आमदनी का द्वार क्या है?" पण्डित जी ने प्रश्न किया।

"रियासत ! मकानात और जमींदारी ।"

"खूब ! लड़की के कितने भाई-बहिन हैं ।"

"भाई-बहिन कोई नहीं, लड़की अकेली है ।"

"आपके केवल एक ही लड़की है और कोई लड़की या लड़का नहीं है ?"

"जी नहीं ।"

यह सुन कर परिडत जी के मुँह में पानी भर आया, आँखें चमकने लगीं । अपनी प्रसन्नता को बलात् दाब कर परिडत जी ने मुँह बनाया और बोले—"इतनी ही बात जरा घाटे की है ।"

"यह तो दैवी बात है । इसको क्या किया जाय ।"

"आपकी वयस तो पचास के लगभग होगी ।"

"जी हाँ छियालिस वर्ष की है ?"

"लड़की की वयस ?"

"चौदह साल की ।"

परिडत जी ने हिसाब लगाया "चौदह साल से अब कोई दूसरा बच्चा नहीं हुआ तब अब क्या होगा । इस लड़की के पहिले कोई संतान हुई थी ?"

"जी हाँ ! एक लड़का और लड़की हुए थे, परन्तु वे नहीं रहे ।"

परिडत जी ने मुँह बना कर कहा—"बड़े शोक की बात है ।"

"परमात्मा की इच्छा है, और क्या कहा जाय ।"

"हाँ जी ! उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता ।"

"यही बात है । हाँ तो लड़के की जन्मकुराडली दे दें तो बड़ी कृपा हो ।"

"जन्मकुराडली आज तो न दे सकूँगा—आप कल किसी समय पधारने का कष्ट करें तो दे सकूँगा ।"

"बहुत अच्छा कल सही । इसी समय ?"

"सन्ध्या को पाँच-छः बजे पधारियेगा ।"

"बहुत अच्छा ।"

उनके चले जाने पर आप झट पत्नी के पास पहुँचे और बोले—"इतने दिन बाद आज एक सम्बन्ध आया है।"

पत्नी उत्सुक होकर बोली—"अच्छा! कहाँ से?"

"—के रहने वाले हैं। पाँच-छ: सौ रुपये महीने की रियासत है।"

"खैर उनसे हमें क्या मतलब। हाँ घर अच्छा है।"

"मतलब क्यों नहीं, लड़की अकेली है और कोई बच्चा नहीं है। हमारा लड़का ही रियासत का मालिक होगा।"

पत्नी प्रसन्न होकर बोली—"यह तो बड़ी अच्छी बात है। तो बस पक्का कर लो।"

"कुण्डली मिला कर ब्याह करेंगे। जो कुण्डली न मिली तो?"

"तो फिर भगवान की मरजी। उसमें हम—तुम क्या कर सकते हैं।"

परन्तु पण्डित जी का ऐसा विश्वास नहीं था। उन्होंने सोचा—"कुण्डली मिलाना तो अपने हाथ की बात है, इसमें भगवान क्या कर सकता है।"

यह सोच कर आप बोले—"अच्छा! कुण्डली ईश्वर चाहेगा तो मिल ही जायगी।"

दूसरे दिन जब लड़की वाले कुण्डली माँगने आये तो आप उनसे बोले "कुण्डली तो नाना के घर में है। बात यह है कि लड़का अधिकतर वहीं रहा है, इस कारण वहीं है। मैंने आज चिट्ठी डाल दी है—एक सप्ताह में आ जायगी—तब तक आप लड़की को कुण्डली भेज दें।

"लड़की की कुण्डली तो हम साथ ही लाये हैं—यदि आप चाहें तो ले लें।"

पण्डित जी बोले—"हाँ, हाँ, लाइये!"

"बात यह है कि मैं स्पष्ट आदमी हूँ। सब काम साफ और शुद्ध करता हूं।"

"क्या सुन्दर बात कही है आपने! यही मेरा भी स्वभाव है।

सफाई से बढ़ कर और कोई चीज नहीं। तो कुण्डली दे जाइये। लड़के की कुण्डली मैं आते ही भेज दूँगा। पता दे जाइये अपना।"

उन्होंने लड़की की कुण्डली और लड़के वाले का पता ले लिया।

अब पण्डित जी बड़े प्रसन्न थे। सोचते थे हमने किस युक्ति से लड़की की कुण्डली ले ली। दूसरे ही दिन आपने अपने ज्योतिषी जी को बुलवाया और उन्हें लड़की की कुण्डली दिखाई। ज्योतिषी जी कुण्डली देख कर बोले—"लड़की के ग्रह तो बड़े सुन्दर पड़े हैं—राजयोग पड़ा हुआ है।"

"सो तो पड़ना ही चाहिए। अच्छा हमारे लड़के की भी कुण्डली ऐसी बना दीजिए कि लड़की की कुण्डली से कमजोर न रहे और मिल भी जाय।"

ज्योतिषी जी ने स्वीकार कर लिया।

(२)

चार दिन पश्चात् ज्योतिषी जी कुण्डली बना कर ले आये। कुण्डली देकर बोले—"बड़ी कठिनता से बनी है, परन्तु महीना, तिथि तथा समय बदल गया—सम्वत् वही रहा।"

"कोई चिन्ता नहीं। मिला कर बनाई है।"

"और क्या इसीलिए तो कठिनता पड़ी।"

"खैर बन तो गई।"

"हाँ सो तो बन गई।"

"बस, इतना ही काफी है।"

"मैंने लड़के की कुण्डली में भी राजयोग कर दिया है और लड़का मंगली था सो वह योग भी हटा दिया।"

"बड़ा अच्छा किया। इसी की आवश्यकता थी।"

आपने झट दूसरे दिन जन्म-कुण्डली डाक द्वारा भेज दी।

एक सप्ताह पश्चात लड़की वाले पुन: आए। पण्डित जी ने पूछा–"कुण्डली मिल गई?"

"हाँ बहुत अच्छी मिल गई है।"

"हाँ मैंने भी मिलवा ली—ठीक मिलती है।"

इसके पश्चात विवाह पक्का हुआ। लेन-देन का प्रश्न आने पर पण्डित जी बोले—"मैं ठहरा कर विवाह करने के विरुद्ध हूँ। आप हमारी और अपनी हैसियत देखकर काम करें, चार आदमी हँसे नहीं, बस इतना चाहता हूं।"

"सो तो ईश्वर चाहे कदापि न होगा। इससे आप निश्चित रहें। मेरे भी चार नाते-रिश्तेदार हैं। मुझे उनका भी तो ख्याल है।"

"बेशक! होना ही चाहिए।"

विवाह पक्का हो गया। पण्डित जी ने प्राप्त रीति से यह पता भी लगवा लिया कि लड़की वाले की पाँच-छः सौ रुपये मासिक की रियासत है और उनके केवल एक लड़की ही है।

विवाह की तिथि निश्चित हो गई। समय समय पर सब रस्में भी पूरी हुईं। परन्तु रस्मों में जो देन-लेन किया गया वह विशेष उत्साहप्रद नहीं था। पत्नी ने इस बात की शिकायत पण्डित जी से की तो वह बोले—"सब ठीक है, बोलो नहीं। छाती पर नहीं धर ले जाँयगे अन्त को तो सब हमारा ही होगा। न दें इस समय—कंजूस स्वभाव वाले ऐसे ही होते हैं—परन्तु अन्त को तो देना ही पड़ेगा।"

यह सुन कर पत्नी को भी सन्तोष हो गया।

निश्चित तिथि पर विवाह हुआ। विवाह में भी लेन-देन साधारण ही रहा। पण्डित जी ने उस समय भी यही सोचकर सन्तोष किया—"आखिर ले कहाँ जायेंगे –मिलेगा सब हमी को। न इस समय सही कुछ दिन बाद सही। लड़के को ससुराल में ही बसा दूँगा– जाते कहाँ हैं बच्चा! सारी कंजूसी भुला दूँगा।"

विवाह होकर जब लड़की घर आई तो पत्नी को बड़ी निराशा

हुई। लड़की रूपवान तो जरा भी न थी साथ ही उसका स्वास्थ्य भी अच्छा न था। पत्नी ने यह समाचार पति को दिया।

पण्डित जी बोले—"खैर रूपवान नहीं है तो न सही! परन्तु स्वास्थ्य ठीक होना चाहिए।"

"ऐसा कोई बहुत गड़बड़ भी नहीं है परन्तु बहुत तन्दुरुस्त नहीं है।"

"ऐसी काठी ही होगी। बस एक लड़का हो जाय, फर चाहे मर भी जाय तो चिन्ता नहीं।"

"हाँ लड़का तो भगवान चाहे साल दो साल में हो ही जायगा।"

"बस काफी है। हाँ एक काम करना होगा।"

"वह क्या?"

"लड़के को सुसराल में ही रखना होगा।"

"यह क्यों?"

"वहाँ रहेगा तो कोई रोजगार-व्यापार कर लेगा—रुपया वही देंगे।"

"दे देंगे?"

"जब उनके कोई है नहीं तब देंगे नहीं तो जाएँगे कहाँ?"

"हाँ यह बात भी ठीक है।"

"बड़े भाग्य से यह सम्बन्ध मिला है। मैंने थोड़ी बुद्धिमानी से काम लिया न कहोगी। इतने सम्बन्ध आये, पर मैंने सब अस्वीकार कर दिए। स्वीकार कर लेता तो यह बढ़िया सम्बन्ध कहाँ मिलता।"

"ठीक बात है! इसीलिए तो कहा है कि धीरज से काम करना अच्छा होता है।"

"लड़की बिदा हो जाय तो एक महीने बाद मैं लड़के को वहीं भेज दूँगा। अपना वहीं रहेगा और वहीं कोई रोजगार कर लेगा।"

"रोजगार के लिए रुपया भी देना पड़ेगा?"

"हम क्यों देंगे, वही देंगे! हमसे माँगने का उनका साहस पड़ेगा?"

"यदि माँगा तो?"

"तो ऐसा उत्तर दूंगा कि याद करेंगे। तुम देखती तो जाओ मैं दो चार बरस में ही लड़के को वहाँ का मालिक बना दूँगा।"

(३)

कुछ दिन पश्चात् पण्डित रामशरण ने लड़के को ससुराल भेज दिया और अपने सम्बन्धी को पत्र लिखा। "प्रिय भाई साहब, चिरंजीव कृष्ण शरण को आपके पास भेजता हूँ। यह मेरे वश का नहीं है। दुकान का काम नहीं देखता, इधर उधर घूमने-फिरने में समय बर्बाद करता रहता है। यहाँ इसकी संगत भी कुछ ऐसे लोगों से हो गई है जिनका चरित्र अच्छा नहीं है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर मैं इसे आप के पास भेजता हूँ। आप इसे किसी काम में लगाइये। वहाँ रह कर यह सुधर जायगा। योग्य सेवा लिखते रहें।"

भवदीय:—रामशरण

कृष्ण शरण ससुराल पहुँच गया। उसके श्वसुर ने पण्डित राम शरण को लिखा—

"प्रिय भाई जी, चिरंजीव कृष्णशरण आगया है। आप ने बड़ा अच्छा किया जो चिरंजीव को यहाँ भेज दिया। यहाँ कुछ दिन रहकर ठीक हो जायगा। प्रकट में तो उसका व्यवहार ऐसा नहीं है जो यह कहा जा सके कि वह आप के प्रतिकूल चलता होगा। खैर, जो भी हो! यहाँ महीना-दो महीना रहने से सब ठीक हो जायगा।

योग्य सेवा लिखते रहें।"

भवदीय—शंकर प्रसाद

यह पत्र पाकर पण्डित रामशरण बहुत हँसे। पत्नी से बोले— "लिखते हैं महीना दो महीना रहने से, यह नहीं कहते कि अब वह वहीं रहेगा।"

"वह रक्खेंगे तब तो रहेगा।" पत्नी ने कहा।

"रक्खेंगे नहीं तो जांयगे कहाँ। कृष्णशरण जब यहाँ आने को

राजी होगा तभी तो भेजेंगे, धक्के देकर थोड़े ही निकाल देंगे।"

"और वह जो अपने आप चला आया?"

"मैंने उसे काफी सिखा पढ़ा दिया है वह वहाँ से टलने वाला नहीं है।"

इस प्रकार पाँच महीने और व्यतीत हो गये। पण्डित रामशरण समय समय पर लड़के को यही परामर्श देते रहे कि अभी वहीं रहो और किसी कार्य में लगने का प्रयत्न करो।

कृष्ण शरण उत्तर देता था कि कार्य में लगाने के लिए उसने कई बार अपने श्वसुर से कहा और उन्होंने यही उत्तर दिया कि जल्दी क्या है। कोई काम सोचकर निश्चित किया जायगा।

पण्डित जी प्रत्येक बार हँस कर यही कहते थे—"बच्चा कब तक टालेंगे।"

पाँच मास व्यतीत हो जाने पर एक दिन उन्हें शंकर का पत्र मिला। उसमें लिखा था—प्रिय भाई जी, आपको यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि चिरंजीवी सौभाग्यवती चम्पादेवी को परसों सन्ध्या के समय शुभ मुहूर्त्त तथा लग्न में भाई की प्राप्ति हुई है। सूचनार्थ निवेदन है। योग्य सेवा लिखते रहें।

भवदीय
शंकर प्रसाद

चम्पा देवी कृष्णशरण की पत्नी का नाम था। यह पत्र पढ़कर पण्डितजी की आँखों के नीचे अँधेरा छा गया। कुछ देर बाद जब सावधान हुए तो पत्नी के पास पहुँचकर बोले—"किस्नू की माँ, तुम्हारे समधी के लड़का हुआ है।"

किस्नू की माँ घबराकर बोली—"क्या?"

"तुम्हारी बहू के भाई हुआ है।"

"कब?"

"परसों!"

"ब्याह को छः महीने हुए। इस से तो मालूम होता है कि ब्याह के समय किस्नू की सास गर्भवती थी।"

"हाँ!"

"यह बात उन्होंने नहीं बताई—छिपा गये।"

"बड़ी दगा की ससुर ने। हमने देन-लेन में भी कुछ नहीं किया। हम यह सोच कर चुप रहे कि सब अपना ही तो है। बड़ा धोखा खाया।"

"अब किस्नू को बुला लो। अब गुजर नहीं होगा। भाग में यही बदा था न लड़की ढंग की मिली न और कुछ मिला।"

"मैं खुद जाऊँगा। जरा उनसे दो-दो बातें तो कर आऊँ।"

रामशरण दो चार दिन बाद समधियाने पहुँचे। समधी से आप बोले—"आपने लड़के को किसी काम में नहीं लगाया।"

समधी ने उत्तर दिया—"किस काम में लगाऊँ, समझ में नहीं आता। अब तो बिलकुल ठीक है, यहाँ तो कोई ऐसी बात नहीं की जिससे हमें कुछ शिकायत होती। आप इसे ले जाइये—वहीं अपनी दुकान पर बिठाइये। वह काम इसका समझा हुआ है। किसी दूसरे काम का अनुभव इसे नहीं है और बिना अनुभव के काम नहीं कर सकता।"

रामशरण चुप हो गए। कोई उत्तर ही समझ में नहीं आया।

कृष्ण शरण ने उनसे अकेले में कहा—"अब यहाँ मेरा रहना उचित नहीं है। जब से लड़का हुआ है तबसे मेरे साथ इनका व्यवहार भी रूखा हो गया।"

"सो तो हो ही जायगा। जो मुझे यह पता होता कि बच्चा होने वाला है तो कदापि विवाह न करता और करता तो पहले काफी रकम धरा लेता। हम तो धोखे में ही मारे गये।"

पण्डित रामशरण लड़के को लेकर लौटे। चलते समय उनको क्रोध शान्त करने का उन्हें कोई अवसर नहीं मिला था। उन्हें और कुछ तो सूझा नहीं। दांत किटाकिटा कर बोले—तुमने समझा होगा कि जन्मपत्र मिलाया है, परन्तु वह जन्मपत्र असली नहीं था।"

शङ्कर दयाल हाथ जोड़ कर बोला—"तो क्या चिन्ता है, मैंने भी तो लड़की की नकली जन्मपत्री आपको दी थी। हिसाब किताब बराबर न आपको शिकायत न मुझे।"

रामशरण का मुँह धुंआं हो गया। यह बार भी उलटा उन्हीं पर पड़ा। रोते-पीटते घर वापिस आये।

प्रमेला

(१)

प्रगतिशील साहित्य-संघ के उत्साही मन्त्री बोले—"इस बार होली में कुछ नवीनता होनी चाहिए। युग बीत गये, वही पुराना ढर्रा चला आ रहा है।"

"जी हाँ होली का त्यौहार किंचित मात्र भी प्रगतिशील नहीं है!" एक सदस्य बोला।

"त्योहार कोई भी प्रगतिशील नहीं है। होली में वही पुरानी बातें —होली जलाओ, रङ्ग चलाओ—बस!" दूसरे ने कहा।

"ठीक! अब यह देखना है कि होली में आगे बढ़ना कैसे सम्भव हो सकता है।"

"एक तरीका तो यह हो सकता कि होली का त्यौहार आगे बढ़कर मनाया जाय!"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह है कि हम लोग फाल्गुन शुक्ल पूर्णमासी को होली न मनावें, आगे बढ़कर मनावें—अर्थात् चैत की पूर्णमासी अथवा अमावस्या को मनावें।"

परन्तु इसमें तो प्रगतिशीलता न रहेगी, वरन् पुरानी होली की तिथियों के बाद पड़ने से पिछड़ जायेगी।"

"पिछड़ कैसे जायगी, आगे बढ़ जायगी।"

"लेकिन लोग तो यही कहेंगे कि पुरानी होली के बाद प्रगतिशील होली मनाई गई, इसलिए प्रगतिशील होली पिछड़ गई।"

"हाँ यह ठीक है। तब क्या पुरानी होली के पहले मनाई जाय?"

"हाँ प्रगतिशीलता के माने तो यही हैं कि पुरानी होली से पहले ही मना ली जाय।"

"इस बार पाँच छः दिन पहले हो जायगी। अगले साल पन्द्रह दिन पूर्व रख ली जायगी।"

"यह ठीक है। तो नोटिस निकाल देना चाहिए।"

"ठहरिये, यह भी तो सोच लीजिए कि होली मनाई कैसे जाय। मनाने में भी तो प्रगतिशीलता होनी चाहिए। अभी तो आपने केवल मनाने के समय में प्रगतिशीलता लाने की बात सोची है।"

"हाँ जनाब यह बात भी विचारणीय है।"

"तो जल्दी विचारो।"

"देखिये—हूँ, आगे बढ़ना—रंग चलाने में आगे बढ़ना—वह किस प्रकार होगा—हूँ, रंग के आगे क्या है।"

"रंग के आगे अभी कुछ नहीं है।"

"मान लीजिए कि हम रंग से आगे बढ़ना चाहें तो रंग के स्थान में काहे का व्यवहार करेंगे।"

"रंग के स्थान में—वह देखो—भगवान तुम्हारा भला करे।—ऊँह कुछ समझ में नहीं आता।"

"चलाई कितनी चीजें जा सकती हैं।"

"रेल चलाई जाती है, बाइसिकिल...."

"अरे भाई, रंग के समान कोई चीज बताओ—रेल वेल से क्या मतलब। रंग चलता है, रंग चलाया जाता है—इसी प्रकार और क्या चलाया जाता है?"

एक साहब बोल उठे—"यदि कवि सम्मेलन रक्खा जाय तो कैसा?"

यह सुनते ही एक महाशय उठकर बाहर भागे। लोगों ने उनसे

पूछा—"कहाँ चले ?"

उन्होंने हाथ के इशारे से कहा—"अभी आता हूँ।"

पाँच मिनट पश्चात् वह लौटकर आये और लम्बे-लम्बे लेटकर बोले—"थोड़ा पानी मँगाना।"

"क्यों, क्या हुआ।"

"बड़े जोर की कै हो गई।"

"क्यों ?"

"यार क्या बताऊँ। कवि सम्मेलन का नाम सुनते ही एकदम से मतली उठी। इसीलिए तो बाहर भागा था।"

"तब तो यार तुम पूरे प्रगतिशील हो ऐसी प्रगतिकिसी ने नहीं की कि कवि सम्मेलन का नाम सुनकर···!"

"फिर तुमने उसी कमबख्त का नाम लिया। मैं यहाँ से चला जाऊंगा। उसका नाम सुनते ही पेट मुँह को आने लगता है।"

"अच्छा जाने दो। हाँ तो हम लोग क्या सोच रहे थे ?"

"यही कि रंग के स्थान में क्या चलाया जाय।"

"रंग के स्थान में रंगरेज चलाया जाय।"

"रँगरेज कैसे चलाया जायगा ?"

"रँगरेज तो स्वयं चलता है। उसे चलाने की क्या आवश्यकता है।"

"हाँ यार, क्या उल्लूपन है, जो चीज स्वयं चलती है, उसे चलाने की क्या आवश्यकता है।"

"अच्छा तो अब सब कार्यक्रम निश्चित हो गया। आज नोटिस निकाल देना चाहिए कि परसों प्रगतिशील होली मनायी जायगी।"

रात में प्रगतिशील संघ के सदस्य एक स्थान पर जमा हुए। वहाँ एक मनुष्याकार पुतला पहिले से ही मौजूद था। इस पुतले की छाती पर लिखा हुआ था 'दकियानूस।' जब सब लोग एकत्र होगये तो संघ के मन्त्री बोले—"सज्जनों, आज हम लोग प्रगतिशील होली मनाने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। इस समय का कार्यक्रम केवल इतना है कि हम होली के बदले दकियानूस को जलावें। दकियानूस प्रगतिशीलता का

विरोधी हैं। इस कारण उसे ही जलाना चाहिए। कल सबेरे से रंगरेज चलेगा।"

"रंगरेज चलेगा ?" एक ने प्रश्न किया।

"हाँ, रंग चलाना पुराना ढंग है। इस कारण प्रगतिशीलता की दृष्टि से रंगरेज चलाया जायगा।"

"रंगरेज कैसे चलाया जायगा।"

"वह आप सबको कल मालूम हो जायगा।"

"अच्छा, मेला भी तो कीजियेगा।"

"अरे हाँ, मेले के सम्बन्ध में तो कुछ सोचा ही नहीं गया।"

"सोच लीजिए।"

"पुरानी चाल के मेले में सब लोग परस्पर मिलते हैं। प्रकाशिता में क्या होना चाहिए—अर्थात् सब लोग मिलकर आपस में लात-जूता करें।"

"यह बात गलत है। लड़ाई-भिड़ाई से अपन कोसों दूर रहते हैं।"

"साल भर का त्योहार है, एक दिन लड़ लेना बुरा नहीं।"

"तो जबानी लड़ाई रखिए। हम तैयार हैं। हाथ-पैरों की लड़ाई के लिए हम तैयार नहीं हो सकते।"

"अच्छा, जबानी जमा खर्च सही। इस प्रकार त्योहार भी मन जायगा और किसी को चोट-चपेट भी नहीं आयेगी।"

यह राह सबको पसन्द आ गई।

यह निश्चित हो जाने के पश्चात दकियानूस का पुतला जलाया गया। सब लोग बड़े प्रसन्न थे कि दकियानूस जल रहा है। सब चिल्ला उठे—"दकियानूसी मुर्दाबाद। प्रगतिशीलता जिन्दाबाद !"

पुतला जल जाने के पश्चात् मन्त्री जी ने पुनः व्याख्यान दिया—"सज्जनों आपने देखा, यह प्रगतिशील होली जलाई गई। कल संध्या-समय इसी स्थान पर प्रगतिशील मेला होगा।"

"मेला नाम न रखिये, कुछ और सोचिए।" एक ने कहा।

"क्यों, क्या इसलिए कि मेला पुराना नाम है।

"इसलिए भी और इसलिए भी कि मेला का अर्थ होता है जिसमें सब लोगों का मेला हो—लोग मिलें।"

"लोग एकत्र तो होंगे ही। इसलिए मेला कहने में क्या हर्ज है?"

"तो थोड़ा अन्तर कर दीजिए। अर्थात् प्रमेला कर दीजिए।"

सर्वसम्मति से यह नाम निश्चित हो गया।

मन्त्री जी बोले—'सज्जनों, कल यहाँ प्रमेला होगा। आप सब लोगों की उपस्थिति आवश्यक है।

इसके पश्चात् होली की सभा समाप्त हुई।

(१)

दूसरे दिन सबेरे आठ बजे के लगभग प्रगतिशील संघ के एक सदस्य के यहाँ किसी ने आबाज दी।

सदस्य महोदय ने पूछा—"कौन है?"

'मैं हूँ रंगरेज।'

सदस्य महोदय ऊपर से आकर बोले-"क्या रंग डालने आये हो?'

"जी नहीं, प्रगतिशील संघ की आज्ञा के अनुसार मैं आपके कुछ कपड़े रँगने आया हूँ। जो कपड़े रंगवाने हों, जल्दी से निकाल दीजिए।"

यह सुनते ही सदस्य महोदय अपनी पत्नी से बोले—"तुम्हें कपड़े रँगवाने हैं?"

"रँगवाई क्या लेगा?" पत्नी ने पूछा।

"मुफ्त। प्रगतिशील संघ की ओर से आया है।"

यह सुनते ही पत्नी ने आधा दर्शन इकलाइयाँ निकालकर दीं और कहा—"इन्हें रँगवा दो। एक हरी, एक नीली, एक गुलाबी, एक फालसई और एक बसन्ती।"

सदस्य महोदय ने इकलाइयाँ लाकर रँगरेज के सामने धर दीं और रँग बता दिए। रँगरेज बोला— "देखिए मुझे सबके यहाँ जाना

है। रँग भी महँगा है। इस कारण केवल दो कपड़े रंगने का हुक्म मिला है।"

पत्नी बोली—"अच्छा, दो ही रंगवा लो।"

सदस्य ने दो इकलाइयाँ लाकर दीं। रंगरेज बोला—"एक मर्दाना कपड़ा और एक जनाना दोनों एक तरह के नहीं रँगे जावेंगे।"

"और जो मर्दाना कपड़ा न रँगना चाहे?"

"तो केवल एक जनाना रँगवा लें।"

सदस्य महोदय ने पुनः पत्नी से परामर्श किया। बोले—"कोई फालतू कपड़ा पड़ा हो तो दे दो। उसे गेरुआ रँगालें।"

"गेरुआ, यह क्यों?" पत्नी ने भ्रकुटी चढ़ाकर पूछा।

"तो मैं और क्या रँगऊँ गेरुआ कपड़ा रंगा धरा रहेगा। कभी सन्यास वन्यास लेना पड़ा तो काम दे जायगा।?'

यह सुनते ही पत्नी आग हो गई। बोली—"हमें नहीं रँगाना है। वाह, अच्छा असुगुन मनाने आया।"

"अच्छा, जाने दो। तुम अपनी एक साड़ी रँगवा लो।'

"हम कुछ नहीं रँगावेंगे। इससे कह दो, सीधी तरह चला जाय। नहीं तो चेलों से खबर लूंगी।"

रंगरेज ने भी यह बात सुनी। वह तुरन्त ही वहाँ से नौ-दो ग्यारह हुआ।

(३)

एक दूसरे सदस्य के यहाँ पहुँचकर उनसे भी दो कपड़े रंगाने के लिए कहा। सदस्य के वृद्ध पिता ने जो सुना कि रंगरेज हाजिर है और मुफ्त कपड़े रँगने को तैयार है तो पुत्र से बोले—"बेटा, हमारा साफा रंगा लो।"

पुत्र ने साफा लाकर रंगरेज को दिया। रंगरेज ने देखा—पूरे बारह गज का साफा है।

रंगरेज बोला—"इसमें तो बहुत देर लगेगी। रंग भी बहुत खर्च होगा। कोई छोटा कपड़ा लाइए।"

यह सुनकर सदस्य का बृद्ध पिता बिगड़ उठा। बोला—"अबे ओ गधे, मर्दों का भी कहीं छोटा कपड़ा होता है! छोटा कपड़ा औरतों का होता है। चला बड़ा रंगरेज की दुम बनकर। बात कहने का भी सलीका नहीं है।"

रंगरेज बोला—"साहब, आप तो खामखाह बिगड़ते हैं। मर्दों का छोटा कपड़ा है लंगोटी। कोई लँगोटी दें दीजिए तो रंग दूं।"

"अबे जायगा यहाँ से या कुछ लेगा। लंगोटी रँगेगा। रंगी लँगोटी कौन देखेगा। तेरी....!"

यह सुनकर रंगरेज वहाँ से भी भागा और सीधा मन्त्री के पास पहुँचा मन्त्री जी ने पूछा—"क्या सबके यहाँ हो आये!

"अरे साहब, आपने भी अच्छा काम बताया। पहली जगह औरत बिगड़ उठी। मैं वहाँ से भाग न आऊँ तो चैला लेकर जुट पड़े। दूसरी जगह एक बुड्ढा बिगड़ उठा। उसने भी मारने की धमकी दी और गाली दी सो घाते में। मुझसे यह काम न होगा। किसी दूसरे को बुला लीजिए।"

यह कहकर रंगरेज चल दिया। मन्त्री जी अपना सा मुँह लेकर खड़े रहे गये।

सन्ध्या समय जब प्रमेले के स्थान पर सब लोग जमा हुए तो एक सदस्य बिगड़कर बोले—"वह आपका रंगरेज नहीं चला। हम तो प्रतीक्षा ही करते रहे।"

मन्त्री जी बोले—"रंगरेज चला था और दो जगह गया भी था, परन्तु वहाँ वह पिटते पिटते बचा। इस कारण फिर वह कहीं नहीं गया।"

"किसके यहाँ पिटते-पिटते बचा?"

मन्त्री जी ने दोनों सदस्यों के नाम बताए। नाम सुनते ही अन्य सदस्यगण उन दोनों सदस्यों से बोले—"क्यों जी, आपको क्या

अधिकार था कि सङ्घ के भेजे हुए आदमी को पीटने के लिये तैयार हो गये।"

"भाई साहब, मैं क्यों तैयार हो गया मेरी पत्नी ने वैसे ही कह दिया था।"

"और मेरे पिता से उस कमबख्त रंगरेज ने एक ऐसी बात कह दी कि उन्हें बुरी लगी।"

"क्या बात कही, बताइये।"

सदस्य ने बता दी। इस पर कुछ सदस्य ने रंगरेज का पक्ष लिया, कुछ ने सदस्य के पिता का व्यवहार ठीक बताया। इस मसले को लेकर काफी वाद-विवाद हुआ।—यहाँ तक के गाली गलौज की नौबत पहुँच गई। दोनों दलों में खूब कहा सुनी हुई। जब मन्त्री जी ने देखा कि मामला बढ़ रहा है और मारपीट हो जाने की सम्भावना है तब वह चिल्ला कर बोले—"सज्जनो, रंग की जगह रंगरेज चलाने का कार्य कुछ ठीक नहीं रहा। अतः अगले साल कोई दूसरी युक्ति सोची जायगी।"

"अरे साहब, आप इनको कुछ नहीं कहते जिन्होंने सब काम बिगाड़ दिए। मुफ्त में हमारी पत्नी की धोती रंग जाती।"

मन्त्री जी बोले—"खैर अब जो हो गया सो हो गया। यदि आपका ऐसा ही खयाल है तो सङ्घ फिर रंगरेज को भेज कर धोतियाँ रंगवा देगा अच्छा अब प्रमेले का कार्यक्रम होना चाहिए।"

"प्रमेले का कार्यक्रम तो स्वतः ही हो गया।" एक सदस्य ने कहा।

"हाँ, यह तो आपका कहना ठीक है। मारपीट तक की नौबत आ गई। इस कारण यह समझ लिया जाय कि प्रमेला भी हो गया।"

"बेशक, और खूब हुआ। साल भर का त्योहार आनन्दपूर्वक समाप्त हुआ। इसके लिए मन्त्री जी को बधाई देना चाहिए।"

मन्त्री जी बोले—"साथ ही जितने प्रगतिशील सङ्घ अन्य-अन्य

नगरों में हैं, उन सबको सूचना दे दी जाय कि हम लोगों ने प्रगतिशील होली बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से मनाई है।"

"बेशक यह अवश्य होना चाहिए।"

इसके पश्चात् 'प्रगतिशील जिन्दाबाद, 'दकियानूसी मुरदाबाद !' के नारों के साथ प्रमेला समाप्त हुआ।

वशीकरण

(१)

नत्थू चाचा ब्राह्मण हैं। वयस पैंतालीस के लगभग है। मुहल्ले में वह नत्थू चाचा के नाम से पुकारे जाते हैं। नत्थू चाचा की जीविका पूजन-पाठ से चलती है। एक लड़का है जिसकी वयस १४, १५ वर्ष के लगभग है। यह लड़का एक संस्कृत-पाठशाला की प्रथमा कक्षा में पढ़ता है। हिन्दी मिडिल पास करके नत्थू चाचा ने इसे संस्कृत-शिक्षा दिलाना ही अधिक उचित समझा। लोगों ने समझाया भी कि अँग्रेजी पढ़ाओ परन्तु नत्थू चाचा ने उत्तर दिया—"अँग्रेजी पढ़कर लड़का भ्रष्ट हो जाता है, आचार-विचार दूषित हो जाते हैं।"

नत्थू चाचा शाक्त हैं और अपने शाक्त कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। परन्तु बुद्धि उनमें वाजिबी ही वाजिबी है।

उनका वेश भी शाक्तों जैसा है। सिर के ऊपर बाल बड़े-बड़े, कंधों तक दाढ़ी और माथे पर लाल बिन्दी। लाल वस्त्र का व्यवहार करते हैं। तन्त्र-मन्त्र तथा अनुष्ठान अधिक करते हैं। आप में, आप ही के कथनानुसार, अलौकिक कार्य करने की भी शक्ति है। मारण, उच्चाटन वशीकरण, शत्रु-स्तम्भन तथा मुकदमे जिता देना उनके बायें हाथ का खेल है, यद्यपि इन शक्तियों का कोई ज्वलन्त प्रमाण अभी तक किसी को देखने को नहीं मिला। जब कोई पूछता—"नत्थू चाचा, आपने कभी

मारण किया है।" तो नत्थू चाचा उत्तर देते-"आज कल मारण करवा कौन सकता है। मारण में हजारों रुपये खर्च होते हैं। इसके अतिरिक्त मैं बाल-बच्चेदार आदमी, मैं मारण करता भी नहीं। गृहस्थ को मारण नहीं करना चाहिए।"

"परन्तु आप चाहें तो कर सकते हैं।"

"हाँ आँ आँ—कर तो सब कुछ सकते हैं।"

"वशीकरण, उच्चाटन आदि तो करते होंगे?"

"क्यों नहीं, यह सब करते हैं। वशीकरण तो अभी हाल में ही किया हैं। एक बड़े आदमी हैं उनकी पत्नी पति के उदासीन व्यवहार से बहुत दुखी थी। उसने पति का वशीकरण हमसे करवाया। हमने किया अब आज कल यह दशा है कि जितना पानी वह पिलाती है उतना ही पति महाराज पीते हैं—गुलाम हो गया, गुलाम! तब से वह स्त्री हमें बहुत मानती है।" इस प्रकार पण्डित जी के कहने से ही उनके अलौकिक कार्यों की जानकारी प्राप्त होती थी।

एक दिन एक व्यक्ति ने नत्थू चाचा के मुँह पर कह दिया—"आज कल के शाक्त केवल माँस-मदिरा खाने-पीने भर के शाक्त हैं—और उनमें कोई तत्व नहीं है।"

यह सुन कर नत्थू चाचा आग हो गये। बोले—"अभी लड़के हो, बच्चे किसी शाक्त से पाला नहीं पड़ा किसी दिन पाला पड़ जायगा तो सब भूल जाओगे। मेरी बात दूसरी है—पर और किसी शाक्त के सामने यह बात कहना भी नहीं।"

"कहेंगे तो क्या करेगा?"

"आज कल के लड़कों में यह बड़ा दोष है कि हर बात में टांग अड़ाते हैं और बहस करने को तैयार रहते हैं। और इसी में कभी खता खा जाते हैं तब रोते हैं।"

एक व्यक्ति बोला—"अच्छा नत्थू चाचा मनुष्य का मारण आप नहीं करते; परन्तु पशुओं को मारण तो आप कर सकते हैं।"

"पशुओं का मारण करने में क्या है।" नत्थू चाचा मुँह बना कर बोले।

"तो चाचा, बाबू मनोहर दास के कुत्ते का मारण आप कर दीजिये। बड़ा कष्ट है उससे। साला रात भर भूँकता है, नींद हराम कर देता है। जो कुछ दस-बीस रुपये खर्च होंगे, वह हम दे देंगे।"

"अबे क्या तुमने मुझे कुत्ता-मार समझा है। कुत्ता मारना जल्लाद का काम है। गधा कहीं का।"

"जल्लाद तो लाठी या बन्दूक से मारता है। आप मन्त्र-बल से मारेंगे। किसी को पता भी न होगा कि किसने मरवा दिया।"

"कुचिला खिला देना, मर जायगा। कुत्ते-बिल्लयों के लिए मारण नहीं किया जाता।"

"कुचिला खिला दें! यह क्या हमें नहीं मालूम है। अच्छी तरकीब बताई, जिसमें बाबू मनोहरदास हम पर दावा कर दें।"

"उन्हें पता चलेगा कि तुमने खिलाया है तब तो दावा करेंगे।"

"पता तो तुरन्त चल जायगा। हमसे उस कुत्ते के पीछे बाबू साहब से कहा-सुनी हो चुकी है। वह तुरन्त ताड़ जायँगे कि इन्हीं का काम है।"

"परन्तु प्रमाण क्या देंगे?"

"प्रमाण भी उत्पन्न कर लेंगे। अपने दो चार पिट्ठुओं से कह देंगे, वे गवाही देंगे कि हमारे सामने श्यामनारायण ने इसे मिठाई खिलाई थी, तभी से कुत्ते की हालत खराब हो गई।"

"खैर भई तुम जानो। हम इस मामले में कुछ नहीं कर सकते।"

(२)

मुहल्ले के नवयुवकों ने परस्पर परामर्श किया कि नत्थू चाचा बड़े शाक्त और तान्त्रिक बनते हैं, इन्हें किसी युक्ति से जेर करना चाहिए।

एक दिन एक व्यक्ति नत्थू चाचा के यहाँ पहुँचा। नत्थू चाचा से वह बोला—"आप वशीकरण तो कर सकते हैं।"

नत्थू चाचा अकड़कर बोले—"हाँ, इसमें क्या है। यह तो हम चुटकी बजाते कर सकते हैं।"

"और उच्चाटन भी!"

"हाँ! वह भी।"

"तो हमारा एक काम कर दीजिए।"

"क्या काम है।"

"हमारे एक पड़ोसी के पास भैंस है। भैंस क्या है पूरी हथिनी है। पन्द्रह सेर नम्बरी तौल से दूध देती है। वह हम लेना चाहते हैं।"

"खरीद क्यों नहीं लेते?"

"वह कमबख्त बेचता नहीं आप कुछ ऐसा कर दीजिए कि वह भैंस हमें मिल जाय।"

नत्थू चाचा कुछ देर विचार करके बोले—"यह कार्य उच्चाटन से सिद्ध हो सकता है। भैंस के स्वामी का उच्चाटन किया जाय जिससे वह उस भैंस को अपने यहाँ न रक्खे! उस समय तुम उसे खरीद ले सकते हो।"

"हाँ! ऐसा कीजिए या ऐसा कर दीजिए कि भैंस का स्वामी अपनी खुशी से हमें भैंस दे दे।"

"वह एक ही बात है!"

"एक बात नहीं है। अपनी खुशी से देगा तो दामों में किफायत हो जायगी, या दाम ही न ले।"

"ऐसा तो वशीकरण से ही हो सकता है।

"तो वही कीजिए।"

"इसमें खर्च पड़ेगा।"

"कितना खर्च पड़ेगा?"

नत्थू चाचा ने कुछ क्षण सोच कर कहा—"पचीस रुपये के लगभग पड़ेगा।"

"तो रुपये काम हो जाने पर मिलेंगे।"

"पूजन-पाठ की सामग्री कहाँ से आवेगी?"

"देखो चाचा ! मामले की बात है। काम हो जाने पर आप हमसे कौड़ी-गराडे से ले लीजिएगा। पहले देने की बात समझ में नहीं आती। काम न हुआ तो ?"

"क्या लड़कपन की बात करते हो। काम कैसे न हो।"

"जब आपको इतना विश्वास है तो फिर रुपये भी मिल जायँगे—परन्तु काम हो जाने पर—व्यवहार की बात है चाचा—नाराज मत होना।"

"परन्तु पूजन-सामग्री के लिए तो कुछ दे दो! उसके लिए हम अपने पास से रुपये नहीं लगायेंगे।"

"कितना रुपया लगेगा ?"

"बस पाँच-सात रुपये।"

"अच्छी बात है सात रुपये हम आपको दे देंगें।"

"तब ठीक है। हम तुम्हारा काम कर देंगे।"

"कब ?"

"दीपावली आ रही है। बड़ा शुभ पर्व है। उसी दिन पूजा करेंगे ?"

"दीपावली के दिन !"

"हाँ ! हम तान्त्रिकों के लिए दीपमालिका की अमावश्या बड़ी महत्वपूर्ण है। उस दिन जो अनुष्ठान किया जाता है, वह अवश्य सिद्ध होता है।"

"तो घर में ही करोगे।"

"नहीं गंगा-तट पर एकान्त में। शिवाबलि देनी होगी—वह घर में नहीं हो सकती।"

"शिवाबलि क्या ?"

"अब यह तुम क्या करोगे पूछ के।"

"कुछ नहीं ! जानना चाहते हैं।"

"किसी दिन साथ ले चलकर दिखा दें। शिवा शृगाल का रूप रखकर आती है और अपना भाग खा जाती है।"

"अच्छा !"

"हाँ !"

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।"

"अभी तुम बच्चे हो। तुम्हें इन बातों का क्या ज्ञान।"

"तो चाचा कहाँ जाओगे ?"

चाचा ने एक स्थान बताया।

वह व्यक्ति बोला—"वह तो बड़ा भयानक स्थान है।"

चाचा हँसकर बोले—"हाँ, तुम्हारे लिए तो ऐसा ही है। पर हमारे लिए कोई बात नहीं।"

"आपको भय नहीं लगता।"

"क्या बात करते हो। भय काहे का। यह तो साधारण बात है। हम शवसाधन कर सकते हैं।"

"वह क्या ?"

"मुर्दे की छाती पर बैठ कर अनुष्ठान किया जाता है। यह सब तंत्र की साधनाएँ हैं –शवसाधन, लतासाधन।"

"तो रात को जाते होगे।"

"और नहीं क्या दिन में। रात में ग्यारह-बारह बजे।"

"अच्छी बात है—किसी दिन आपके साथ चलकर देखेंगे।"

"चक्र में सम्मिलित हो जाना।"

"चक्र क्या ?"

"एक प्रकार का पूजन होता है।"

"जैसा आप कहेंगे करेंगे। तो हम सात रुपये आपको दे जायँगे। दीपावली को एक सप्ताह है।"

"बस उसी दिन सब काम हो जायगा।"

"बस ठीक है।"

(३)

उस व्यक्ति ने सात रुपये नत्थू चाचा को दे दिये।

दीपावलो का दिन आया। नत्थू चाचा ने पूजन का सब समान

बनवाया ! माँस-मदिरा का भी प्रबन्ध किया। यह सब सामान बाँधकर और एक अपने शिष्य को साथ लेकर नत्थू चाचा गङ्गातट पर पहुंचे। इस स्थान से थोड़ी दूर पर श्मशान था।

नत्थू चाचा ने एक साफ-सुथरे स्थान पर आसन लगाया—पूजन की सब सामग्री अपने सन्मुख रक्खी शिष्य भी बैठा। इस प्रकार उन्होंने अपना कार्य आरम्भ किया।

गुरु-शिष्य दोनों ने मदिरा-पान किया और नशे में झूम-झूमकर स्तोत्रों का उच्चारण करने लगे। कुछ देर बाद शिवाबलि देने के लिए तैयारी की। एक पत्तल में, भोजन की जो सामग्री ले गये थे, रखकर तथा एक सिकोरे में मदिरा लेकर नत्थू चाचा अकेले ही एक ओर चले।

कुछ दूर निकल जाने पर उन्होंने एक स्थान पर पत्तल रख दी तथा मन्त्र पढ़कर ताली बजाई और 'शिवे' कह कर पुकारा।

इसी समय अन्धकार में से एक व्यक्ति निकलकर धीरे-धीरे उनकी ओर आता दिखाई पड़ा। बिलकुल नङ्ग-धड़ङ्ग, केवल एक लाल लंगोटा बाँधे हुए काला भुजंगा, आँखें लाल, भयानक वेश, हाथ में त्रिशूल।

नत्थू चाचा आँख फाड़कर मंत्र-मुग्ध की भांति उसकी ओर देखते रहे। वह धीरे-धीरे चाचा के सम्मुख आया। चाचा भय से काँपने लगे, मुँह सूख गया। वह मूर्ति आकर लगभग चार गज की दूरी पर खड़ी हो गई। चाचा थर-थर काँप रहे थे।

वह मूर्ति गम्भीर स्वर में बोली—"दुष्ट आज तूने भ्रष्ट पूजन किया है। हमको और शिवा को बड़ा क्लेश हुआ। इसी कारण शिवा तेरे बुलाने पर नहीं आयी ! बोल इसका क्या दन्ड दिया जाय।" अन्तिम वाक्य मूर्त्ति ने गर्जकर कहा।

चाचा की जीभ तालू से चिपक गई थी, इस कारण कुछ बोल न सके, हाथ जोड़कर चुपचाप खड़े रहे।

मूर्ति ने पुनः कड़ककर कहा—"उत्तर नहीं देता दुष्ट ! अभी तुझे

समाप्त कर दूँ ।" कह कर मूर्ति ने अपना त्रिशूल उठाकर चाचा की ओर ताना ।

चाचा कुछ बोले नहीं । हाथ जोड़े हुए औंधे मुँह गिरे और बेहोश हो गये । मूर्ति जिस ओर से आयी थी उसी ओर वापस जाकर अन्धकार में विलीन हो गई । जब चाचा को देर हुई तो उनका शिष्य उन्हें ढूँढ़ने आया । उन्हें बेहोश पड़ा देखकर उसे भी भय लगा, परन्तु उसने शीघ्रता पूर्वक चाचा के मुख तथा सिर पर गंगाजल डाला । कुछ क्षण पश्चात चाचा को होश आया । होश आते ही बोले—"प्रभो, दास का अपराध क्षमा कीजिये !"

शिष्य बोला—"यह आप किससे कह रहे हैं ।"

चाचा ने शिष्य की आवाज सुनकर उसे ध्यान-पूर्वक देखा—जान में जान आयी । उठकर बैठ गये । शिष्य से बोले—"जल्दी चलो यहाँ से, आज पूजन में कुछ गड़बड़ी हुई थी ! भगवान भैरव स्वयम् आये थे ।"

× × +

घर आकर चाचा को बुखार आगया ! भैंस का उच्चाटन कराने वाला व्यक्ति तथा मुहल्ले के दो अन्य लड़के चाचा को देखने आये । उस व्यक्ति ने पूछा—"चाचा बुखार कैसे आ गया ?"

"क्या बताऊँ, तुम्हारा कार्य करने गया था—एक शिष्य साथ था । उसने पूजन में कुछ त्रुटि कर दी—इससे भगवान भैरव रुष्ट हो गये ।"

"और इसलिए आपको बुखार आ गया ।"

"अरे वह तो हमीं थे जो जीवित लौट आये । दूसरा होता तो या तो पागल हो जाता या मर जाता । परन्तु मैं तो साधारण तांत्रिक नहीं हूँ ! भगवान भैरव सामने आये । कुछ सवाल-जवाब हुए ! अन्त को कुछ और तो कर न सके—दण्ड में बुखार दे गये ।"

"तो आपने भैरव के दर्शन किये ।"

"बिलकुल साक्षात-जैसे हम-तुम बैठे ।"

"बड़े भाग्यवान हैं आप ।"

"भाग्यशाली की बात नहीं, साधना की बात है। हमने बहुत साधना की है, इसी से बच गये।"

"हमें तो चाचा इन बातों पर विश्वास नहीं है।"

"अभी लड़के हो।"

"चाचा। हमें कुछ सन्देह हो रहा है।"

"सन्देह कैसा?"

"रामसिंह को आप जानते ही हैं। वह सब जगह कहता फिरता है कि, मैंने भैरव बनकर चाचा के हवास ठिकाने कर दिये।"

चाचा कान खड़े करके बोले—"क्या कहता है?"

"यही कि चाचा बड़े डरपोक आदमी हैं—बेहोश होकर गिर पड़े।"

"बकता है! उसका इतना साहस कहाँ हो सकता है जो इतनी रात में वहाँ जाय।"

"पता नहीं! कहता तो यही है।"

"झख मारता है।"

चाचा ने विश्वास नहीं किया। चाचा के स्वास्थ्य लाभ करने पर चाचा लगे दून की हाँकने।

परन्तु जब यह दून की हाँकते तब लोग कह देते—"बस देख लिया। उस दिन रामसिंह को देखकर घिग्घी बँध गई, औंधे मुँह गिरे। चले हैं बड़े तान्त्रिक बनकर।"

चाचा कड़क कर कहते—"वह झक मारता है ससुरा—इतना सफेद झूठ! रामसिंह की इतनी हिम्मत है कि रात में उस स्थान पर जा सके?"

"वह अकेला नहीं था। दो आदमी और थे, जो वहाँ से कुछ दूर पर खड़े थे।"

"बस रहने दो—हम ऐसी बात नहीं सुनना चाहते।"

वह समाप्त हो गई, परन्तु लड़के चाचा से कहते—"चाचा हमको

भी दिखा दो कि सियार कैसे शराब पीता है।"

इस पर चाचा बिगड़ कर कहते—"क्या कोई मदारी समझा है जो तमाशा दिखा दूँ। देखने के लिए हाथ भर का कलेजा चाहिए।"

"वह तो आपका है। तभी तो बुखार आ गया था।"

चाचा को लोगों ने इतना परेशान किया कि उन्होंने तन्त्र पर बात करना ही बन्द कर दिया। कोई कुछ जिक्र उठाता भी है तो चाचा बात टालकर वहाँ से हट जाते हैं।

कम्यूनिस्ट सभा

(१)

होली के अवसर पर जबकि चारों ओर अबीर-गुलाल की धूम मची थी, कुछ कम्यूनिस्ट लोग एक कमरे में जमा थे। यद्यपि इनके वस्त्र भी होली के रंग में रँगे हुए थे, पर इनके मुखमण्डल पर होली की मुद्रा का चिन्ह भी नहीं था। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी बड़ी गम्भीर समस्या पर विचार हो रहा है।

सहसा एक महाशय बोले—

"जब तक कम्यूनिज्म स्थापित नहीं होता तब तक ये बातें बन्द नहीं हो सकतीं।'

"बन्द हों चाहे न हों, परन्तु हम लोगों को तो विरोध करना ही चाहिए।" दूसरे ने कहा।

"हम लोगों को होली में भाग न लेना चाहिए।" तीसरा बोला।

"हाँ! साथ ही एक सभा करके होली का विरोध करना चाहिए।"

"सभा तो खैर होनी ही चाहिए परन्तु और कुछ भी होना चाहिए।"

"और क्या होना चाहिए?"

कोई ऐसा कार्य जो प्रभावोत्पादक हो।"

सब लोग सोचने लगे परन्तु साम्यवादी मस्तिष्क होने के कारण

किसी को कुछ न सूझा। साम्यवादी मस्तिष्क की यही विशेषता है कि वह ऐसी ही बात सोचेगा जो सबको सूझ जाय। जो बात सर्वसाधारण की सूझ के परे होती है वह साम्यवादी मस्तिष्क को कभी सूझ ही नहीं सकती।

एक महाशय ने पूछी—"रूस में तो होली होती नहीं।"

"जी नहीं।"

"तब तो केवल यही हो सकता है कि या तो इसमें होली खेलने की प्रथा स्थापित हो अथवा हिन्दुस्तान में होली बन्द कर दी जाय। इनमें से कौन सा कार्य सरल है?"

"दोनों कार्य कठिन हैं।"

"यह बात ठीक है! मान लिया कि दोनों कठिन हैं।"

"यह बात आप साम्यवाद के विरुद्ध कर रहे हैं कि थोड़े से व्यक्ति एक बात पर विचार कर रहे हैं। सबको विचार करने का अवसर देना चाहिए।"

"तो सभा का आयोजन किया जाय, उससे सब लोग विचार कर लेंगे।"

"हाँ, यह ठीक है। ऐसा ही होना चाहिए।" अतः दूसरे दिन संध्या समय एक सभा की गई। अपनेराम भी उसमें सम्मिलित हुए, यद्यपि अपने राम साम्यवादी नहीं है; परन्तु कुछ साम्यवादी मित्रों की कदाचित यह आशा है कि आगे चलकर अपनेराम भी उनके गोल में सम्मिलित हो जायेंगे—इसी कारण वे अपनेराम के साथ खास रियायत करते हैं।'

खैर साहब, सभा के समय के पन्द्रह मिनट पूर्व अपनेराम सभास्थल में जा पहुँचे। कुछ लोग आ गये थे और कुछ आ रहे थे। अपनेराम एक कोने में जा बैठे।

सभा का समय हो गया; परन्तु मन्त्री जी गायब थे। अपनेराम ने पूछा—"क्या देर-दार है?"

"जरा मन्त्री जी आ जाए तब कार्यवाही आरम्भ हो।"

"मन्त्री जी को इतना विलम्ब क्यों हुआ ? उन्हें तो सबसे पहले आना था।"

एक महाशय बोले।

अपनेराम ने कहा–"सबसे पहले आ जाना साम्यवाद के विरुद्ध है।"

"क्यों? विरुद्ध क्यों है?"

"मन्त्री जी में कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं जो वह पहले ही आकर डट जायँ? साम्यवाद के अर्थ तो यह है कि सब एक साथ आवें और सब एक साथ जायँ।"

"परन्तु यह भी तो नहीं हो रहा है। सब साथ कहाँ आ रहे हैं?"

"साम्यवादी सिद्धान्त को मानते हैं—व्यवहार में यदि गड़बड़ी होती है तो उसके जिम्मेदार साम्यवादी नहीं हैं।"

एक साम्यवादी महाशय बोल उठे—

"नहीं ऐसी बात तो नहीं है। हम लोग जो कहते हैं उसे व्यवहार में लाने का प्रयत्न भी करते हैं।"

इसी समय मन्त्री जी आ गये।

"लीजिए मन्त्री जी आ गये। अब कार्य आरम्भ हो जायगा।"

मन्त्री के एक हाथ में कुछ कागज-पत्र थे जिन्हें उन्होंने मेज पर रख दिया और एक बार सभा-स्थल का सिंहावलोकन किया। इसके पश्चात् मन्त्री जी कुछ सहकारियों से खुसुर-फुसुर करने लगे। कुछ वार्तालाप करके वह अपनेराम के पास आये और बोले—"सभापति के लिये आपका नाम उपस्थित करते हैं।"

"क्या?

"आप सभापति बन जायँ!"

"यह आशीर्वाद दे रहे हैं या प्रार्थना कर रहे हैं?"

"नहीं, सभापति बनने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं।"

"परन्तु आपको उचित है कि किसी कम्यूनिस्ट को सभापति बनाएँ।"

"नहीं, यह कार्य आप ही को करना होगा।"

"कदाचित कम्यूनिस्ट सब बराबर हैं, इस कारण उनमें से कोई सभापति नहीं बनाया जा सकता !"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं !"

"तब फिर उन्हीं में से किसी को बना दीजिए।"

"इस योग्य यहाँ कोई है नहीं।"

"क्या कहा ! कामरेडों में कोई सभापति बनने योग्य नहीं। यह आप अपनी ओर से कह रहे हैं या सब की सलाह से ?"

"इस मामले में सलाह लेने की क्या आवश्यकता है।"

"बिना सलाह के आप सब कामरेडों को सभापतित्व की योग्यता से खारिज किये दे रहे हैं ?"

"जी हाँ ! आप ऐसा ही समझ लीजिए। शीघ्रता कीजिए, बड़ा विलम्ब हो रहा है।"

अपनेराम ने देखा कि अब तो आ ही फँसे हैं, इसलिये सभापति बने बिना कल्याण नहीं। अतः अपनेराम ने स्वीकार कर लिया।

अपनेराम के लिए सभापति का प्रस्ताव होने पर अपनेराम सभापति के आसन पर विराजमान हो गये। मन्त्री जी ने बोलने वालों की सूची पेश की। कई नाम थे।

पहले एक महोदय ने एक कविता पढ़ी। उसमें यही कहा गया था कि ऐसे कुसमय में जबकि अन्न-वस्त्र मिलता नहीं—होली मनाना अनुचित है इस कविता पर खूब तालियाँ पिटीं। एक महोदय बोले—"इसे फिर से पढ़िये !"

अपनेराम ने कहा—'यदि आप कविता दो बार पढ़वायेंगे तो भाषण भी दो बार दिये जायँगे।'

"भाषणों पर यह नियम लागू नहीं होता।" मन्त्री जी बोले।

"होना चाहिए ! अन्यथा कम्यूनिस्ट सिद्धान्त ही बदल जायगा। सब को समान अधिकार मिलने चाहिये !"

"यदि अपनेराम के सभापतित्व में कोई श्रोता किसी भाषण को

सुन कर बोल उठा—'यह भाषण दोबारा होना चाहिये' तो अपने राम उसे दोबारा बोलने की आज्ञा दे देंगे।"

"परन्तु भाषण याद कैसे रहेगा? कविता तो लिखी रहती है।"

"खैर मुझे इससे बहस नहीं है। मैं दोबारा आज्ञा दे दूंगा।"

खैर साहब पहले एक महाशय ने आकर बोलना प्रारम्भ किया—"सज्जनो यद्यपि रूस में होली नहीं होती, परन्तु तब भी हम लोग अपना भारतीय त्योहार मान कर इसे मनाते हैं।"

"न मनाना चाहिये।" एक कामरेड ने आवाज लगाई।

"क्यों?" एक ने प्रश्न किया।

"क्योंकि इस समय देश में सुख शान्ति नहीं है।"

एक महोदय खड़े होकर बोले—"मेरी राय में तो होली मनाना चाहिये। सुख-शान्ति ऐसे ही अवसरों पर मिलती है।"

हमने कहा—"अच्छा तो आपको सुख-शान्ति की तलाश है!"

"मुझे ही क्या, संसार उसकी खोज में है। परन्तु सुख शान्ति कुछ थोड़े से धनीमानी सज्जनों को ही मिलती है, सर्व-साधारण को नहीं मिलती।"

"धनीमानी सज्जनों को सुख-शान्ति! यह आपसे किसने कहा?"

"लोगों का खयाल तो ऐसा ही है"

"बिल्कुल गलत खयाल है। धनीमानी सज्जनों को जितनी चिन्ता सवार रहती है उतनी निर्धन को नहीं रहती।"

"क्या?" वक्ता ने पूछा।

"धनी को दुनिया भर की चिन्ता रहती है। किसी का देना है, किसी से पावना है, किसी से मिलना है, किसी से बात करना है—ऐसे बीसों झंझट लगे रहते हैं। निर्धन को ऐसी कोई चिन्ता नहीं रहती।" अपने राम ने कहा।

वक्ता ने पुनः कहना आरम्भ किया—"आप सभापति जी की बात पर ध्यान न देकर मेरी बात पर ध्यान दें। सभापति जी इन बातों को नहीं समझ सकते। हाँ तो ऐसे कुसमय में होली मनाना अनुचित है।

जितना पैसा रंग-गुलाल में खर्च किया जायेगा उतना यदि किसी अच्छे काम में लगाया जाय तो राष्ट्र की सेवा हो जाय।"

"मेरी समझ में वह पैसा कम्यूनिस्टों को दान कर दिया जाय!" एक कामरेड महाशय बोले।

अपने राम बोले—"हियर! हियर! इससे बढ़के और पुण्य क्या होगा! परन्तु क्या कामरेड लोग यह आश्वासन दे सकते हैं कि जो पैसा पुण्य करके आप लोगों को देगा उसे अगले जन्म में वह पैसा—छः सात गुना होकर मिलेगा?"

"हम लोग तो अगला जन्म मानते ही नहीं।"

"तब तो आपको पुण्य-दान मिल चुका। दान लेना हो तो अगला जन्म अवश्य मानिए।"

"और दान देने वाला छै गुना सातगुना कैसे मांग सकता है? इतनी सूदखोरी उचित नहीं।"

"यह सूदखोरी नहीं, ब्लैक मार्केटिंग है। एक रुपया देकर सात मिलने की आशा रखना क्या कहलाएगा?"

"अपने शास्त्रों में तो यही लिखा है।" अपनेराम ने कहा।

"शास्त्रों की निर्धारित की हुई ब्याज की दर मान्य नहीं हो सकती।"

"यह दर तो ईश्वर की ओर से नियुक्त की गई है।"

"इसीलिये तो हम लोग ईश्वर को नहीं मानते। ईश्वर सबसे बड़ा ब्याज लेना वाला है। जुवारियों के लिये सुना था कि बड़ा लम्बा सूद देते हैं, सबेरे सौ ले जाते हैं तो शाम को एक सौ पाँच दे जाते हैं। परन्तु ईश्वर ने उनके भी कान कतर लिए।"

उनके पश्चात् एक अन्य सज्जन आये उन्होंने कहना आरम्भ किया—"सज्जनो! मैं ये व्यर्थ की बातें पसन्द नहीं करता। मैं तो सीधी बात कहता हूँ कि होली का त्योहार बन्द कर दिया जाए, यद्यपि हमारी घरवाली बन्द करने के विरुद्ध है।"

"क्यों?" प्रश्न किया गया।

"इसलिये कि वह कम्यूनिस्ट नहीं है।"

यह सुनते ही अपनेराम ने कहा—"खूब याद आया ! जिन कामरेडों की स्त्रियां कम्यूनिस्ट हों वे कृपया अपने हाथ उठा दें।"

एक भी हाथ नहीं उठा।

अपने राम ने कहा—"एक भी कामरेड की पत्नी कम्यूनिस्ट नहीं है। यह बड़ी बेजा बात है, क्योंकि इस प्रकार आप लोगों का आधा अंग ही कम्यूनिस्ट है।"

"खैर!"

"खैर वैर कुछ नहीं। मैं तभी सभापति हो सकता हूं जब कम्यूनिस्टों का सम्पूर्ण अंग कम्यूनिस्ट हो।"

"खैर, यह तो अभी फिलहाल हो नहीं सकती।"

"तो अपने राम भी ऐसे अधूरे कम्यूनिस्टों की सभा का सभापतित्व नहीं कर सकते।"

यह कह कर अपने राम वहां से नौ-दो-ग्यारह हुए।

वैषम्य

(१)

रायबहादुर बाबू श्यामाचरण एक धनाढ्य व्यक्ति हैं। जमींदारी तथा जायदाद से उन्हें पाँच छः हजार रुपये मासिक की आय हो जाती है। नगर में इनकी एक सुन्दर कोठी है—इसी कोठी में इनका निवास है।

बाबू साहब की वयस पचास के लगभग है। दो पुत्र तथा एक पुत्री है, जिनमें से सबसे छोटा अभी अविवाहित है।

संध्या के ७ बज चुके थे। बाबू साहब अपने मित्रों सहित कोठी के सामने घास के लान पर बने हुए गोल चबूतरे पर विराजमान थे। श्वेत मेजपोश से ढकी हुई एक गोल मेज चबूतरे के बीचोबीच लगी थी। इसके चारों ओर कुर्सियाँ लगी हुई थीं—इन्हीं पर सब लोग विराजमान थे।

सहसा बाबू साहब जम्हुवाई लेकर बोले—"अब समय हो गया।"

"हाँ और क्या! मँगवाइये!" ब्रजनन्दन नामक व्यक्ति ने कहा।

बाबू साहब ने किंचित गर्दन घुमाकर कुछ उच्च स्वर से कहा—"अब लाओ!"

कुछ दूर पर दो बेरा खड़े थे। बाबू साहब की बात सुनकर वे दोनों कोठी के अन्दर चले गये।

"आज मौसम बड़ा सुहावना है।"

"क्या बात है। पोने का लुत्फ तो इसी मौसम में है—'जाम ला साकि़या फिर घिर के घटा आई है।'" "इस मौसम में बड़े बड़ों की तोबा टूट जाती है। 'ऐसे मौसम में जो तोबा करे सौदाई (पागल) है।'" एक ने कहा।

"खूब ! अच्छा कहा है।"

"भई, यह चीज तो किसी मौसम में भी त्यागने योग्य नहीं है।"

इन्हीं बातों में बेरा मदिरा-पान का सामान ले आये। दो बोतल ह्स्किी, सोड़ा, बर्फ। दोनों बेरा ने सबके गिलास बनाकर तैयार किये और कबाब की एक एक प्लेट सब के सामने रख दी। 'गुडलक' के साथ मदिरापान आरम्भ हुआ। बाबू साहब बोले—"बरसात पर कुछ और शेर सुनाओ, तुम्हें तो बहुत याद हैं।"

"क्या कहने हैं ! दीवान के दीवान याद हैं इस शख्स को गजब का हाफिजा (स्मरण शक्ति) है।" एक कायस्थ एडवोकेट बाबू शंकर-दयाल ने कहा।

"हाँ सुनाओ महेन्द्रसिंह !"

सुनिये—"पीने वाले क्यों न हों सौ दिल सौ जाँ से निसार। दिल को तड़पाती है क्या क्या हर अदा बरसात की।"

"भई, तड़पन-फड़कन का यहाँ काम नहीं है। यहाँ तो—'हर रोज रोजे ईद है, हर रात शबबरात, सोता हूँ हाथ गर्दने मीना में डाल के।' कृष्ण प्रसाद दर नामक काश्मीरी सज्जन ने कहा।

"मीना महरी ? वाह भतीजे !"

"मीना महरी कौन ?" रायबहादुर साहब हँसते हुए बोले।

"इनकी एक मुंहलगी है, नाम मीना और जात·········कहारिन !"

दर साहब बोले—"इन गंवारों के सामने शेरो-शायरी कहना बिल-कुल बेकार है ! मीना शराब की बोतल को कहते हैं, इन्हें कहारिन याद आती है !"

महेन्द्रसिंह बोला—"पीने वाले सबसे पहले मांगते हैं यह दुआ,

मैकदे (शराबखाने) पर टूट कर बरसे घटा बरसात की ।"

"खूब ! अच्छा शेर है ।"

"आसमाँ से अब शराबे नाब बरसे क्या अजब, आँख में लाती है मस्ती यह घटा बरसात की ।"

इसी प्रकार कुछ देर तक शेरख्वानी के साथ मदिरापान होता रहा सब लोग मदिरोन्मत हो गये । सहसा ब्रजनन्दन उठ कर खड़ा होगया । आखें रक्तिम, गाल चढ़े हुए, बाछें खिली हुईं । खड़े होकर वह बोला—"जरा एक शेर इस गुलाम का भी सुनिये ।"

"हां जरा इस चिड़ीतन के गुलाम का भी शेर सुनिये ।" एडवोकेट साहब हँसते हुए बोले ।

"यह चिड़िया का गुलाम नहीं है, हुकुम का गुलाम है ।" दर साहब ने कहा ।

"अच्छा कह बे, हम हुकम देते हैं ।" एडवोकेट साहब ने कहा ।

ब्रजनन्दन ने मटक कर भाव बताते हुए कहा—"दुख्तेरिज (द्राक्ष-नान्दिनी अर्थात शराब) पर क्यों न हू कुर्बान मैं सौ जान से !' इससे जरा गौर कीजिएगा—किससे ? (बोतल की ओर उंगली उठाकर) इससे ! हाँ ! यही तो खास बात है—शीशे में यह शराब नहीं, लालपरी है । हाय ! हाय ! लालपरी.......।"

"अबे दूसरा मिसरा तो कह काले देव !" दर साहब बोले ।

"खूब बोला राजा इन्दर (इन्द्र) का साला । हा ! हा ! हा !" ब्रजनन्दन पागल की भाँति हंसता हुआ बोला । "राजा हूं मैं कौम का इन्दर मेरा नाम बिन परियों की दीद (दर्शन) के नहीं मुझे आराम ।"

"जब से नत्था चिरंजी की मण्डली टूटी तबसे इसकी कद्र जाती रही ! वरन इसके भी जमाने थे । लोग इकन्नी-दुवन्नी फेंकते थे, दस-बारह आने तो यह इसी तरह पैदा कर लेता था ।"

सबने कहकहा लगाया ।

"टुम काला आडमी किस माफिक बोलटा, हम टुमारी बाट सम-

भने नेइ शकटा।" ब्रजनन्दन ने बेखल की भाँति कहा।

"देखिए। क्या क्या बोलियाँ याद हैं—यह भला कभी भूखा रह सकता है ?"

"और बरसात में खूब बोलता है।"

रायबहादुर साहब बोले—"अब खाना मँगाया जाय। क्यों ?"

"हाँ मंगवाइये !"

(२)

रायबहादुर साहब की कोठी के निकट ही कुछ क्वार्टर बने हुए थे। इन क्वार्टरों में नौकरी पेशा वाले गरीब लोग रहा करते थे। इन्हीं में एक ठाकुर परिवार रहता था। इस परिवार में चार व्यक्ति थे। एक पचास वर्षीय वृद्ध—नाम श्यामसिंह, उसकी पत्नी और दो सन्तानें जिनमें एक बालिका आयु दस वर्ष, एक बालक आयु पन्द्रह वर्ष ! श्यामसिंह एक कारखाने में काम करता था। वेतन पचीस रुपये मासिक मिलता था। इन्हीं पचीस रुपयों में चार प्राणी अपना गुजर करते थे।

इतवार का दिन था। श्यामसिंह दोपहर के समय अपनी पत्नी से वार्तालाप कर रहा था। पत्नी कह रही थी—"अब रामू को कहीं काम में लगाना चाहिए— गुजारा नहीं चलता।"

"मैं चाहता था कि साल दो साल और ठहर जाऊँ, फिर काम में लगाऊँ।"

"क्या बतावें, पढ़ लेता तो अच्छा ही था पर।"

"आज कल पढ़ाई इतनी मँहगी है कि गरीब आदमी तो पढ़ा ही नहीं सकता।"

"कोई ऐसा काम मिल जाय जो इसके लायक हो ! ज्यादा मेहनत का काम तो उससे नहीं होगा।"

"देखो कुछ तो करना ही पड़ेगा। कहाँ गया है ?"

"कहीं गया होगा।"

"इस तरह बेकार फिरने से तो कहीं काम में लग जाय तो अच्छा है। रोटी खा गया ?"

"न कहीं! उसका कोई समय है, कभी दो बजे आयगा तब खायगा, कभी तीन चार भी बज जाते हैं। सबेरे गुड़ खा के निकल जाता है।"

"आज मैं उससे बात करूँगा।"

बातें करते करते श्यामसिंह सो गया। तीन बजे के लगभग वह जाग पड़ा। जागते ही उसने देखा कि रामू बैठा भोजन कर रहा है।

"बड़ी देर कर देता है, कहाँ घूमा करता है ?" श्यामसिंह ने पूछा।

"कहीं नहीं !"

"कहीं नहीं ? घर में नहीं रहता तो कहीं तो जाता ही होगा ?"

पिता की बात का उत्तर न देकर रामू बोला—"चाचा, हम खोंचा लगायँगे, हमें एक थाल और दो चार कटोरे और बाँट-तराजू ला दो।"

"काहे का खोञ्चा लगायगा ?"

"यही फसल की चीजें! पट्टी-रेवड़ी, मूंगफली, धनिये के आलू। कभी कुछ कभी कुछ!"

श्यामसिंह 'हुँ' कहकर विचार में पड़ गया। थोड़ी देर विचार करने के पश्चात् बोला—"काम तो बुरा नहीं है, पर तुम से होगा ?"

"होगा क्यों नहीं।"

"खूब सोच-समझ लेओ। ऐसा न हो कि मुझे तुम्हारी खबर लेना पड़े।"

"नहीं चाचा! हमारा एक साथी यही काम करता है। हमने कई दिन उसके साथ घूम के देखा है।"

"अच्छी बात है। थाल तो चाहे घर में ही निकल आवे। एक थाल पड़ा तो था। रामू की माँ—थाल है कोई ?"

"हाँ एक है तो, साफ करना पड़ेगा।"

"तो साफ कर दो—तराजू-बाँट आज ले आऊँगा। और क्या चाहिए ?"

"बस ! एक-दो कटोरे या कूँड़ियाँ हों।"

"कूँड़ियाँ मिट्टी की ले आना।"

"हाँ ! मट्टी की भी काम दे जायँगी।"

"और"

"और एक पाँच-छः रुपये।"

"क्या लगायगा ?"

"अभी तो पट्टी लगाऊँगा। पाँच रुपये जमा करने पड़ेंगे। रोज पट्टी ले आया करूंगा।"

"अच्छी बात है। लेकिन यह याद रखना कि अगर तुमने ठीक से काम न किया तो मैं बुरी तरह पेश आऊँगा।"

"नहीं चाचा ! देखना तो कैसे करता हूँ।"

"कितनी बचत हो जाया करेगी।"

"रुपये बारह आने की बचत होगी।"

"हूँ ! अच्छा आज तुम अपना सब ठीक-ठीक कर लो। मैं बाँट लाये देता हूँ।"

श्यामसिंह ने अपने एक परिचित से दस रुपये लेकर रामसिंह का सामान दुरुस्त कर दिया।

पहले दिन रामू ने आठ आने पैदा किये। दूसरे दिन बारह आने ! इस प्रकार नित्य ही आठ आने से लेकर एक रुपए तक की आय होने लगी। रामू के माता-पिता बहुत प्रसन्न थे।

एक दिन श्यामसिंह पत्नी से बोला—"रामू भगवान चाहे तो दिन दिन तरक्की करेगा। दो रुपये रोज लाने लगे तो मैं नौकरी छोड़ दूं—अब मुझ से काम नहीं होता। बड़ी थकावट आ जाती है।"

"देखो ! भगवान की मरजी होगी तो पैदा ही करने लगेगा।"

"इसका ब्याह भी हो जाय। बस अपना कमाय-खाय।"

"लड़की भी तो है सामने।"

"हाँ! लड़की का भी ब्याह करना होगा। तब तक भगवान कुछ न कुछ उपाय कर ही देंगे।"

"हाँ, हम गरीबों को तो उन्हीं का भरोसा है।"

(३)

रायबहादुर साहब के यहाँ संध्या-समय नित्य की भाँति मित्र-मंडली जमा थी। दौर चल रहा था। सहसा रायबहादुर की मण्डली का विदूषक ब्रजनन्दन बोला—"आपकी कितनी उम्र है बाबू जी!"

"बाबूजी तुम्हारे बाप लगते हैं क्या?" दर महाशय ने हंसते हुए कहा।

"हाँ मामा, तुम ऐसा ही समझो।"

रायबहादुर ने हंसते हुए पूछा—"क्यों, उम्र क्या करोगे पूछ के?"

"आपका ब्याह करायगा।" महेन्द्रसिंह बोला।

"खैर हम कुछ करेंगे—आप बताइये तो।"

"पचास में एक महीना कम है।"

"बस बन गई बात।"

"क्या बन गई, अपनी बुढ़िया भेड़ेगा क्या?"

"तुमने जो अपनी अम्मा को निकाल दिया है—अनाथालय में पड़ी है। उसी के लिए बात चीत है। समझे चिरंजीव!" ब्रजनन्दन ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

रायबहादुर साहब बोले—"खैर, मजाक न करो, बात बताओ—उम्र क्यों पूछो! बीमा-एजेण्ट बन गये क्या।"

"अजी यह बामाँ-एजेण्ट है, बीमा-एजेण्ट नहीं है।"

"हम आपका 'गोल्डेन जुबली' मनायगा।"

यह बात सुनते ही सबके कान खड़े हुए। एडवोकेट साहब उठकर खड़े हो गये और बोले—"भई क्या बात कही है तुमने ब्रजनन्दन! जी

खुश कर दिया। वाकई इनकी 'गोल्डेन जुबली' मनाई जानी चाहिए।"

"बात तो दूर की सोची इसने—है बौखल तो क्या हुआ।"

"बड़ा बना हुआ है—इसे बौखल मत समझना।"

ब्रजनन्दन बोला—"तो क्या राय है आप लोगों की।"

"राय पक्की है, तैयारी शुरू हो जानी चाहिए। एक महीना काफी है।"

रायबहादुर साहब मन ही मन प्रसन्न होकर बोले—"मेरी सुवर्ण जुबली क्या मनाओगे।"

"आप मत बोलिये। यह हम लोगों का प्रोग्राम है।"

"अच्छा भई, अब न बोलूँगा, जो तुम लोगों की इच्छा हो करो।"

"कितना रुपया खर्च होगा।"

"यह तो अपनी समाई की बात है जितना चाहो खर्च कर दो।"

"कोई चिन्ता नहीं, हम लोग आपस में चन्दा कर लेंगे।"

रायबहादुर साहब बोल उठे—"यह बात गलत है जनाब! रुपया तो मेरा ही खर्च होगा। प्रबन्ध आप लोगों का।"

"वह सब हो जायगा।" दर साहब ने कहा।

"कितना रुपया खर्च होगा?" एडवोकेट महाशय ने पूछा।

"यह तो अपनी समाई की बात है, चाहे जितना खर्च कर दो।"

रायबहादुर साहब बोले—"पाँच हजार खर्च होगा?"

"पाँच हजार में बहुत बढ़िया हो जायगी।"

"तो मैं पाँच हजार का बजट स्वीकार करता हूँ।"

"वाह वा! फिर क्या है मजे ही मजे हैं।"

"भई काम बाँट लेना चाहिए।" ब्रजनन्दन ने कहा।

"हम लोग काम बाँट लेंगे। आप को अभी से एक काम सौंपा जाता है।"

"वह कौन सा?"

"रंडियाँ ठीक करना। जलसा भी तो होगा।"

"जलसा तो अवश्य होगा, परन्तु रंडियाँ ठीक करने का काम दर

साहब को दिया जाता तो अच्छा था, बरसों हुसनाबाई के साथ मंजीरे बजा चुके हैं।"

इस पर सब ने अट्टहास किया।

"और यह भी अफवाह थी कि दर साहब की हुसना से कुछ रिश्तेदारी भी है—यह उसके सौतेले भाई हैं शायद !"

"इस समय तो ब्रजनन्दन ने दर साहब को दाब लिया।" महेन्द्रसिंह हंसते हुए बोला।

दर महाशय बोले —"हाँ इस समय तो इसकी चढ़ बनी है।"

"अच्छा जलसा होगा, दावत होगी—और ?" एडवोकेट साहब ने पूछा।

"और रोशनी होगी। कोठी बिजली की रोशनी से जगमगा उठेगी।"

"और ?"

"और क्या होता है। नौकर-चाकरों को इनाम-इकराम बटेगा।"

"ब्रजनन्दन के लिए चाँदी के कड़े बनवा दीजिएगा।" दर साहब बोले।

"अबे सोने के बनवाने की सिफारिश कर, अन्त को तेरी बहिन के ही पास जायँगे। मैं तो बेच-बाच कर उसी को खिला दूँ।"

इस पर पुनः हँसी हुई।

"आज तो ब्रजनन्दन बहुत चर्ब बैठ रहा है।"

इसी प्रकार के हंसी-मजाक के साथ-साथ जयन्ती का प्रोग्राम बनता रहा।

(४)

रायबहादुर साहब की सुवर्ण-जयन्ती की तैयारियाँ हो रही थीं।

रामू अपने पिता से बोला—"चाचा, कल से हम खोंचा नहीं लगायंगे।"

"क्यों ?"

"कल से हम बाबू श्यामाचरण के यहाँ काम करेंगे।"

"क्या नौकरी ?"

"उनके यहाँ कुछ है—जयन्ती कहते हैं उसे! उसकी तैयारी हो रही है। बड़े बड़े जलसे होंगे, दावत होगी, कोठी सजाई जायगी।"

"हाँ! हाँ! फिर ?"

"उसके लिए कुछ आदमियों की जरूरत है। हम से भी पूछा गया था, हमने मंजूर कर लिया।"

"क्या मिलेगा ?"

"खाना और एक रुपया रोज!"

"कितने दिन का काम है ?"

"आठ-दस दिन का है। उसके बाद फिर खोंचा लगाने लगूँगा।"

"ठीक है!"

रात में रामू की माँ बोली—"भगवान रामू को चिरंजीव रक्खे बड़ी मदद मिली इससे!"

"हाँ लड़का होनहार है।"

"इसका ब्याह कर देना चाहिए।"

"सो तो करना ही पड़ेगा।"

"हमारा बुढ़ापे का सहारा तो यही है।"

"और क्या, और हमारा कौन बैठा है।"

दूसरे दिन से रामू कोठी में काम करने लगा। कागज की झण्डियाँ तथा फूलों से कोठी खूब सजाई गई। बिजली की रोशनी के लिए कोठी पर असंख्य बत्तियाँ लगाई गईं।

जयन्ती का दिन आ पहुँचा कोठी के द्वार पर शहनाई बजने लगी। सबेरे बाबू साहब की पत्नी ने बाबू साहब से पूछा—"औरतों को खिलाने का प्रबन्ध किसके सिपुर्द रहेगा ?"

"औरतों को खिलाने का प्रबन्ध तुम करोगी! यह काम तुम्हारा है, मेरा नहीं।"

संध्या समय बिजली की रोशनी से कोठी जगमगा उठी। ब्रजनंदन, दर साहब, महेन्द्रसिंह तथा बाबू साहब के अन्य लोग प्रबन्ध में व्यस्त थे। बड़े धूम से दावत हुई जिसमें नगर के बड़े-छोटे हाकिम-हुक्काम सम्मिलित हुए। रंडियों के चार डेरे और एक मण्डली भाँड़ों की थी।

एक कमरा प्राइवेट रक्खा गया जिसमें पीने का सामान था। इस प्रकार बड़ी धूमधाम तथा हर्षोल्लास हो रहा था।

नशे में ब्रजनन्दन खूब उछलता फिर रहा था। थोड़ी थोड़ी देर बाद प्राइवेट रूम में जाकर एक-दो पेग जमा आता।

रामू भी बड़े उत्साह से दौड़ा दौड़ा फिर रहा था। उसे पहनने के लिये नये कपड़े मिले थे।

सहसा ब्रजनन्दन ने कोठी पर लगी हुई बत्तियों की ओर देख कर कहा—"यह बीच की चार पाँच बत्तियाँ कैसे बुझ गई ?"

एक व्यक्ति देख कर बोला—"जान पड़ता है फ्यूज हो गई।"

"पंक्ति टूटी हुई बुरी मालूम होती है। बिजली-मिस्त्री कहाँ है, उससे कहो बत्तियाँ बदल दे। अभी फौरन बदले।"

कुछ क्षण पश्चात् वह व्यक्ति आकर बोला—"मिस्त्री तो अभी अभी चला गया है—आध घंटे के लिए।"

"वह क्यों गया, उसको यहीं हाजिर रहना था।"

पास ही रामू खड़ा था, वह बोला—"पूछ गया है। कहता था जरा हो आऊँ फिर रात भर यहीं रहूँगा।"

"बत्ती तो हमारे पास है, कोई लगाने वाला चाहिए।" ब्रजनन्दन बोला।

रामू बोल उठा—"लाइये, मैं लगा दूँगा।"

"तू जानता है ?"

'हां ! उसमें बात ही कौन सी है।"

"तो लगा तो दे बेटा झट-पट, शाबास ! लेकिन ऊँचा बहुत है।"

"बिजली वाले की सीढ़ी तो रक्खी है।"

"तो बस बन गया काम। सीढ़ी लगवाओ मैं बतियाँ लाता हूँ।"

ब्रजनन्दन बतियाँ ले आया, इधर आदमियों ने सीढ़ी लगा दी।

रामू बतियाँ लेकर सीढ़ी पर चढ़ने लगा।

"सीढ़ी थामे रहना, ऐसा न हो फिसल जाय।" रामू ने कहा।

सीढ़ी लगाने वाले बोले--"हाँ, हम साधे हैं—बेखौफ चढ़ जाओ।"

रामू ऊपर पहुँच गया। कंधे के बल दीवार से टिक कर वह बत्तियाँ बदलने लगा। परन्तु ज्यों ही उसने होल्डर पकड़ा त्यों ही एक जोर का झटका लगा –रामू उस झटके से पीछे की ओर झुका--उसने सधने की चेष्टा की परन्तु सध न सका। और सिर के बल नीचे पक्के फर्श पर आ गिरा।

बाबू साहब जलसा देख रहे थे। भांड़ों की नकल हो रही थी खूब कहकहे लग रहे थे। उसी समय एक आदमी घबराया हुआ आकर बोला –"एक आदमी मर गया सरकार!"

बाबू साहब नशे में झूमते हुए बोले--"तो उठवा कर फेंकवा दो साले को।"

"आप पर से न्योछावर हो गया अब आप बहुत दिन जीवित रहेंगे।" एक महाशय बोले।

"दारोगा जी आप जरा चले चलिए!"

"क्यों मजे में खलल डालते हो। पड़ा रहने दो, अभी उठाकर पंचायत नामा कर लेंगे। कैसे मर गया?"

"बत्तियां बदलने चाढ़ा था, सीढ़ी से पर गिर पड़ा। उसके बाप को खबर दी है वह आता ही होगा।"

"आने दो साले को! क्या कर सकता है। किसी ने मार थोड़े ही डाला है।"

श्यामसिंह ने आकर पुत्र की लाश देखी बेहोश होकर लाश पर गिर पड़ा।

इधर तो श्यामसिंह के लिए संसार अन्धकारपूर्ण हो गया। उसकी

सारी आशाओं पर वज्रपात हो गया। वृद्धापे के लिए उसने जो हवाई किले बना रक्खे थे वे सब शून्य में विलीन हो गये और निराशा का भयानक समुद्र सन्मुख लहराने लगा और उधर—अट्टहास, हर्षोल्लास, नवीन उत्साह, उज्ज्वल भविष्य।

रामू मर गया, अपने माता-पिता के बुढ़ापे का सहारा, उनकी जन्म भर की थाती।

इधर श्यामसिंह और उनकी पत्नी का अत्यन्त करुणापूर्ण रुदन, जिसे सुनकर पत्थर भी द्रवित हुआ था, हो रहा था—और उधर जलसे में कोकिल कंठ का गान—तबले की थाप के साथ हंसी-मजाक का अट्ट हास चल रहा था।

और लोग इसी को संसार कहते हैं।

भक्षक रक्षक

(१)

दोपहर का समय था। पं चन्द्रकान्त सर्राफ अपनी दुकान पर बैठे हुए थे। थोड़ी ही दूर पर उनका एक सहकारी भी विराजमान था। एक बगल में उनका एक नौकर भी बैठा था। चन्द्रकान्त की दूकान पर अनेक प्रकार की सोने-चाँदी की तैयार वस्तुएं बिकती थीं।

पं० चन्द्रकान्त जम्हाई लेकर बोले—"आज बड़ा सन्नाटा है।"

सहकारी बोला—"अब धूप कुछ तेज होने लगी है इसलिए दोपहर में आदमी नहीं निकलते।"

"हाँ यह बात तो है।" चन्द्रकान्त ने कहा। दोनों मौन हो गये। समय काटने के लिए चन्द्रकान्त ने एक बही उठा ली और उसके पन्ने उलटने लगे। कुछ समय इस प्रकार बीतने के पश्चात सामने से स्त्री-पुरुष का एक जोड़ा आता दिखाई पड़ा। दुकानों की ओर ताकते हुये वे दोनों चन्द्रकान्त की दुकान के सामने आये। दुकान के सन्मुख आकर दोनों ठिठक गये। शो केस में लगे हुये सामान को कुछ देर ध्यान-पूर्वक देखने के पश्चात दोनों ने धीमे स्वर में कुछ बात की। चन्द्रकान्त ने बही पर से दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा। स्त्री की वयस २०, २२ वर्ष के लगभग थी। गोरी चिट्टी नाक-नक्शे से दुरुस्त तथा हृष्ट-पुष्ट।

पुरुष की वयस चालीस के लगभग होगी—साँवला रंग, कद नाटा, शरीर का पतला, कोट-पेन्ट-कालर-नेकटाई से लैस। स्त्री बैंगनीरङ्ग की बनारसी साड़ी और उसी कपड़े का जम्पर तथा पैरों में सेण्डल पहने थी। पुरुष ने आगे बढ़कर चन्द्रकान्त से पूछा—"साड़ी पिन है ?"

"हाँ! ऊपर आजाइये।"

आगे आगे स्त्री और पीछे पुरुष। दोनों दुकान पर चढ़ कर अन्दर आगये। पुरुष तो खड़ा रहा—स्त्री कुर्सी पर बैठ गई। चन्द्रकान्त ने एक बड़ा बक्स खोल कर स्त्री के हाथ में दे दिया। इस बक्स में अनेक डिजाइन तथा मूल्य की साड़ीपिनें लगी हुई थीं। स्त्री कुछ क्षण तक उन्हें देख कर पुरुष से बोली—"जरा देखो!"

"मैं क्या देखूँ जो तुम्हें पसन्द हो वह ले लो।"

"कुछ सलाह तो दो।"

"पसन्द में सलाह का क्या काम!" यह कह कर पुरुष चन्द्रकान्त की ओर देख कर किञ्चित मुस्कराया। चन्द्रकान्त भी मुस्करा दिये और बोले—"ठीक कहा आपने।"

स्त्री एक पिन की ओर संकेत करके पुरुष से बोली—"यह पिन अच्छी है?"

पुरुष पिन की ओर देख कर बोला—"मुझे तो सभी अच्छी लगती हैं।"

स्त्री ने चन्द्रकान्त से पूछा—"इसके क्या दाम हैं?"

चन्द्रकान्त ने पिन में लगा हुआ छोटा सा टिकिट देख कर कहा—"पचीस रुपया।"

"गिनी गोल्ड का है?" पुरुष ने पूछा।

"हाँ बीच में जो सफेद नगीना है वह पुखराज है।"

"पुखराज तो पीला होता है" स्त्री ने कहा।

चन्द्रकान्त शिष्टता-पूर्वक हँसकर बोले—"पीला भी होता है और सफेद भी।"

"मैं तो हीरा समझी थी।" स्त्री ने कहा।

"इतना बड़ा हीरा होता तो इस पिन के दाम दो सौ रुपये होते।"

"अच्छा तो इसे ही निकाल दीजिये। यही ले लिया।" अन्तिम वाक्य स्त्री ने पुरुष की ओर देख कर कहा।

"ठीक है!" चन्द्रकान्त से वह बोला—"दाम कुछ कम कर दीजिये।"

"बिल्कुल एक दाम हैं। हमारे यहाँ मोल-तोल नहीं होता।" चन्द्रकान्त ने पिन निकाल कर एक छोटी डिब्बी में रखते हुए कहा।

पुरुष ने जेब से मनी बेग निकाला और पचीस रुपये गिन कर चन्द्रकान्त को दिये। चन्द्रकान्त ने रसीद दी।

दोनों बिदा हुये।

(२)

पं० चन्द्रकान्त जवान आदमी हैं। वयस ३०, ३२ वर्ष के लगभग है। चन्द्रकान्त, उन्हीं जैसे चरित्र के लोगों में रंगीली तबियत के आदमी प्रसिद्ध हैं। शरीफाना ढंग से परस्त्री तथा वेश्यागमन करने वाले को कुछ लोग रंगीली तबियत का आदमी कहते हैं। पं० चन्द्रकान्त इसी ढंग के रंगीले आदमी हैं।

सन्ध्या का समय था। पं० चन्द्रकान्त अपनी दुकान पर विराजमान थे। इसी समय उनके एक घनिष्ट मित्र जो उन्हीं के समान रंगीले थे आये। चन्द्रकान्त मुस्कराकर बोले—"आओ रजनी गन्धा!"

चन्द्रकान्त ने इनका नाम रजनी गन्धा रख दिया था। अपने घनिष्ट मित्रों में यह महाशय इसी नाम से पुकारे जाते थे। रजनीगन्धा नाम इस कारण पड़ा कि यह महाशय रात में ही निकलते थे। सन्ध्या को स्नान करके, अच्छे वस्त्र पहन कर तथा इत्र-सेन्ट से सुवासित होकर घूमने निकलते थे और ग्यारह-बारह बजे घर वापिस जाते थे। घर के रईस तथा धनाढ्य थे।

रजनी गन्धा महाशय बैठ कर बोले—"क्या हो रहा है।"

"बस यहाँ तो वही नित्य के पापड़ बेलना—आप अपनी कहिये ! आज कार नहीं लाये ?"

"ऐसे ही टहलता हुआ चला आया । कार लड़के-बच्चों को सिनेमा ले गई है ।"

"यह कहो ! और क्या खबर है ?"

"खबर यह है कि कल लखनऊ चलते हो ?"

"लखनऊ ! हाँ काम तो है । तुम क्यों जा रहे हो ?"

"ऐसे ही घूमने-फिरने ! बहुत दिनों से कहीं गया नहीं इस कारण तबियत मचल रही है ।"

"हूँ तबियत मचल रही है—मैं सब समझता हूँ ।" चन्द्रकान्त ने मुस्कराकर सिर हिलाते हुये कहा ।

रजनीगन्धा महाशय भी मुस्करा दिये और बोले—"चलोगे ?"

"चलो ! मुझे तो जाना ही है । रेल से चलोगे या कार से !"

"कार ले चलेंगे । कल सबेरे चलो । दिन भर घूमें फिरें, तुम अपना काम कर लेना । रात को होटल में ठहर जाँयेंगे ।"

"वह तो तू ठहरेगा ही—रजनीगन्धा जो ठहरा रात को ही महकेगा ।" चन्द्रकान्त ने मुस्कराते हुये रहस्यपूर्ण दृष्टि से कहा ।

"हाँ तो बोलो—पक्का रहा ।"

"अभी बताता हूँ ।"

यह कह कर चंद्रकान्त ने अपने सहकारी से कहा—"जरा वह लिस्ट तो निकालना—देखें कौन कौन चीजें लानी हैं ।"

सहकारी ने सूची निकाल कर दी । चन्द्रकान्त उसे ध्यान-पूर्वक देख कर सहकारी से बोले—"इतनी सब चीजें आवेंगी ?"

"हाँ आना तो सभी चाहिये !"

"देखो ! कल दिन भर में काम हो जायगा तो आजाँयगी ।"

"तो परसों भी ठहर जाँयगे—शाम तक काम हो जायगा बस उसी समय चल देंगे ।" रजनीगन्धा ने कहा ।

"हाँ ! हाँ ! अच्छा पक्का रहा ।"

(३)

दूसरे दिन पं० चंद्रकान्त तथा रजनीगन्धा कार द्वारा लखनऊ पहुँचे। दिन भर इधर उधर घूमने के पश्चात सन्ध्या समय ये दोनों अपने परिचित होटल में पहुँच गये। होटल के मैनेजर ने मुस्कराते हुये इनका स्वागत किया। रजनीगन्धा ने पूछा—"हमारा रूम खाली है?"

"खाली है सरकार! आप का रूम तो मैं अधिकतर खाली ही रखता हूँ कि न जाने कब सरकार तशरीफ ले आवें।"

"बड़ी मेहरबानी है।"

होटल के गेराज में कार खड़ी कर के दोनों अपने कमरे में पहुँचे। कमरा काफी बड़ा था। एक ओर दो पलङ्ग बराबर एक दूसरे से सटे हुये बिछे थे। पलंग पर बिस्तर भी लगे हुये थे। दूसरी ओर एक सिंगार मेज लगी थी एक ओर कपड़े टाँगने की अलमारी थी—दीवार पर भी खूँटियाँ थीं। बीच में एक छोटी सी गोल मेज के चारों ओर चार कुर्सियाँ बिछी थीं। एक ओर गुसलखाने में जाने का द्वार था। दो बत्तियाँ तथा पङ्खा भी था। रजनीगन्धा ने पङ्खा खोलते हुये कहा—"अब गर्मी पड़ने लगी।"

दोनों ने कोट उतार कर टाँग दिए और कुर्सियों पर बैठ कर हवा खाने लगे। थोड़ी ही देर बाद एक ब्वाय आया और उसने पूछा—"खाना कब खाइयेगा।"

"खाना! नौ बजे! अभी तो जरा नहाना है।"

"बहुत अच्छा!" कह कर ब्वाय जाने लगा। रजनी गन्धा ने उसे रोक कर कहा—"जरा सुनना। वह अल्लहरक्खू कहाँ है।"

"है। बुलवाऊँ?"

"हाँ!"

ब्वाय चला गया। चन्द्रकान्त मुस्कराकर बोले—"क्या मजाल जो चूक जाय! अबे कभी कभी तो भूल जाया कर।"

"भूलने वाले की ऐसी-तैसी! और मैं भूल जाऊँ तो तुम कैसे हो-

कर का माला छोड़ कर मनका माला जपते हो बच्चा ! बगुला हो—देखने में बड़े शान्त और गम्भीर परन्तु ध्यान मछली की ही ओर रहता है ।"

इस समय अल्लहरक्खू आ गया । उसने आते ही फराशी सलाम किया । अल्लहरक्खू की वयस पचास के लगभग ! गाल में पान की गिलौरी दबी हुई है ।

"कहो मियाँ अच्छे हो ?"

"हुजूर के इकबाल से सब बखैरियत ! क्या हुक्म है ।"

"क्या बताना पड़ेगा ?"

"बस आपका इशारा ही काफी है ।"

"हमारी पसन्द तो जानते ही हो ।"

"नई चीज लीजिए ! इन्शाअल्लाह देख कर फड़क जाइयेगा ।"

यह कहकर अल्लहरक्खू चला गया ।

"अच्छा मैं जरा नहा डालूँ ।"

"हाँ माँग चोटो से लैस हो जाऊँ ।"

"बको मत !" कह कर रजनीगन्धा गुसलखाने में चला गया ।

जिस समय रजनीगन्धा गुसलखाने से निकल कर बाहर आया और सिंगार मेज के आइने के सामने बैठकर बाल संवार रहा था उसी समय अल्लहरक्खू आगया । उसके पीछे एक स्त्री थी । अल्लहरक्खू उससे बोला—"चली आओ ।" स्त्री सकुचाती हुई आकर कुर्सी पर बैठ गई । परन्तु ज्यों ही उसकी दृष्टि चन्द्रकान्त पर पड़ी वह चौंक उठी । चंद्रकान्त ने भी उसे ध्यान-पूर्वक देखा सहसा वह भी चौंके । यह स्त्री वही थी जो एक मास पूर्व पचीस रुपये की साड़ी पिन ले गई थी !

स्त्री तुरन्त उठ खड़ी हुई और अल्लह से बोली—"चलो !"

"क्यों ! क्यों ! बैठो शरीफ आदमी हैं ।"

चन्द्रकान्त बोल उठा—"बैठो ! कोई डरने की बात नहीं है । अल्लहरक्खू तुम जाओ ।"

अल्लहरक्खू चला गया। रजनीगन्धा चुपचाप देख रहा था। चन्द्रकान्त ने पूछा—"तुम कौन हो सच बताओ।"

स्त्री रोने लगी। कुछ देर बाद जब वह शान्त हुई तो बोली—"आप विश्वास नहीं करेंगे।"

"विश्वास क्यों नहीं करेंगे—कहो।"

स्त्री ने अपना वृतान्त सुनाया। वह एक भले घर की लड़की थी। पड़ोस के एक युवक के प्रेम में फँस कर उसके साथ भाग खड़ी हुई थी। उस युवक ने कुछ दिनों बाद उसे उस व्यक्ति को सौंप दिया जिसके साथ अब वह रहती है और जो उस दिन उसके साथ चन्द्रकान्त की दुकान पर गया था। वह पुरुष उससे यह पेशा करवाता है।

चन्द्रकान्त ने कहा—"तुम उसका कहना क्यों मानती हो ?"

"वह जल्लाद है ! उसकी बात न मानूं तो जान से मार दे।"

चन्द्रकान्त रजनीगन्धा से परामर्श कर के स्त्री से बोला—"तुम हमारे साथ चलो तो हम किसी भले आदमी से तुम्हारा विवाह कर दें।"

"मैं तैयार हूँ। मेरा उद्धार कीजिए। आपका जन्म भर एहसान मानूँगा।"

× × × ×

चन्द्रकान्त उस स्त्री को अपने साथ ले आये और एक युवक के साथ उसका विवाह करवा दिया।

कभी कभी भक्षक भी रक्षक हो जाता है।

चलते-फिरते

स्थान—रूस का रेजेव नगर

(रेजेव की जर्मन फौज का कमाण्डर अपने सामने एक नक्शा फैलाये बैठा है—दो अन्य अफसर चिन्तित मुद्रा में सामने उपस्थित हैं ।)

कमाण्डर—(सिर उठाकर) हमको रेजेव नगर खाली करना ही पड़ेगा ।

एक अफसर—अगर न खाली किया जाय तो ?

कमाण्डर—क्यों न खाली किया जाय ! हम रेजेव को दूसरा स्टालिनग्राड नहीं बनाना चाहते । अगर हम घिर गये तो हमारी भी वही दशा होगी, जो स्टालिनग्राड में घिरी हुई सेना की हुई ।

दूसरा अफसर—आप ठीक कहते हैं श्रीमान् ! हमको यहाँ से हटने के लिए तैयार हो जाना चाहिए ।

कमाण्डर—तुम लोग जाकर सेना को यहाँ से कूच करने के लिए तैयार करो ।

दोनों अफसर—बहुत अच्छा ! हाईल हिटलर !

कमाण्डर—हाईल हिटलर !

(सैनिकों का कैम्प)

एक सैनिक—सुना है यहाँ से पीछे हटने का हुक्म होने वाला है ।

दूसरा सैनिक—हाँ मैंने भी सुना है। परन्तु ऐसा क्यों किया जा रहा है। क्या रूसी सेना जो इधर आ रही है इतनी ताकतवर है कि हम उसका मुकाबला नहीं कर सकते।

तीसरा सैनिक--नहीं यह बात नहीं है। अब हमारे लिए यहाँ का मौसम ठीक नहीं रहा।

दूसरा सैनिक--मौसम ठीक कैसे नहीं रहा?

तीसरा सैनिक- अभी तक सर्दी का मौसम था। अब बसन्त आ रहा है।

पहला सैनिक—परन्तु बसन्त तो हमारे अनुकूल होना चाहिए।

तीसरा सैनिक पहले रहता था अब नहीं रहा।

दूसरा सैनिक--यह क्यों?

तीसरा सैनिक—(धीरे स्वर में) सुना है कि अब फौज की कमाण्ड हिटलर के हाथ में नहीं रही।

पहला सैनिक—तो इससे क्या हुआ?

तीसरा सैनिक--इससे यह हुआ कि अब सब मामला उलटा हो गया है।

दोनों सैनिक—(हँसते हुए) बड़े मसखरे हो।

तीसरा सैनिक—ऐसा मत कहना-सबसे बड़ा तो कमाण्डर है।

स्थान—रूस में हिटलर का हेड क्वार्टर

(हिटलर गोरिंग तथा डा० गोबिल्स से वार्तालाप कर रहा है)

हिटलर—इस बार मैं नात्सी वर्षगाँठ पर बर्लिन आकर अपना भाषण न कर सकूंगा। गोरिंग मेरी ओर से तुम भाषण कर देना और गोबिल्स तुम भी कुछ कह देना।

गोरिंग—आपके न जाने से जर्मन जनता को सन्देह तथा निराशा होगी।

हिटलर—ओह! अगर तुम इतना भी नहीं कर सकते कि अपनी

वक्तृता से उस सन्देह तथा निराशा को उत्पन्न होने का अवसर न दो तो फिर तुम लोग किस मर्ज की दवा हो।

गोरिंग-लेकिन फ्यूहरर ! जो मर्ज पैदा करता है वही उसे दूर करना भी जानता है।

हिटलर—इसका क्या मतलब ?

गोरिंग—धृष्टता को क्षमा कीजिएगा। आपने ही जरमन जनता को बड़ी लम्बा लम्बी आशाएं दिला रक्खो हैं—उनसे लम्बे चौड़े वादे कर रक्खे हैं।

हिटलर—ओह ! क्या बात करते हो। जनता बेवकूफ होती है। एक होशियार आदमी उसे जिस समय जिधर चाहे घुमा सकता है।

गोबिल्स—इस घुमाने-फिराने के काम में हमारी अपेक्षा फ्यूहरर अधिक पटु हैं।

हिटलर—तुम लोगों को भी होना चाहिए।

गोरिंग—'चाहिए' का प्रश्न ही तो बड़ा कठिन है। जो होना चाहिए बहुधा वह नहीं होता। यदि होता तो अब तक रूस कभी का फतह होगया होता।

हिटलर—गोरिंग, मैं तुम्हारे व्यंग को भली भाँति समझता हूँ। लेकिन तुम्हें याद रखना चाहिए कि हम मनुष्यों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं—प्रकृति पर नहीं।

गोरिङ्ग—हाँ यह ठीक है और साथ ही यह भी ठीक है कि हम कुछ आदमियों को कुछ समय के लिए बेवकूफ बनाये रख सकते हैं, परन्तु सब आदमियों को सदैव बेवकूफ नहीं बनाये रख सकते।

हिटलर—यदि हम बेवकूफ बनाने के तरीकों को बदलते रहें तो बहुत दिनों तक बेवकूफ बनाये रख सकते हैं।

गोरिङ्ग—वह कैसे ?

हिटलर—जैसे इस समय जनता से यदि कहा जाय कि जरमनी की हार जरमन जनता का सर्वनाश कर देगी, उनका अस्तिव मिटा देगी—अत: हमें अपने सर्वस्व की बाजी लगा कर इस युद्ध को जीतने का प्रयत्न

करना चाहिए, तो मेरा खयाल है इसका प्रभाव जरमन जनता का उत्साह बढ़ाने में बिजयों के संवाद से भी अधिक अच्छा पड़ेगा।

गोबिल्स—यह बिल्कुल ठीक है। सर्व साधारण को बेवकूफ बनाने की कला खूब जानते हैं।

हिटलर—तो बस जाओ! जैसा मैंने कहा है वैसा करो। मैं रूसी मोरचे से हट नहीं सकता, केवल इतना कह देने से जनता शान्त हो जायगी और मेरी अनुपस्थिति से निराशा तथा सन्देह उत्पन्न न होगा।

[गोरिंग तथा गोबिल्स हिटलर के केम्प के बाहर आकर]

गोरिङ्ग—वाकई फ्यूहरर लोगों को बेवकूफ बनाने की कला खूब जानता है।

गोबिल्स-मेरा भी खयाल यही है।

गोरिङ्ग—खयाल! प्रमाण रहते हुए खयाल नहीं विश्वास होना चाहिए।

गोबिल्स—प्रमाण कैसा?

गोरिङ्ग—हम दोनों बेवकूफ बने चले जा रहे हैं। इससे अधिक प्रमाण और क्या होगा।

स्थान—बर्लिन का एक घर (तीन पुरुष तथा एक स्त्री बैठे वार्तालाप कर रहे हैं)

स्त्री—अब तो बर्लिन पर शत्रु के हवाई हमले प्रति दिन भयानक होते जा रहे हैं।

पुरुष—"उस दिन अँग्रेजी ब्राडकास्ट सुना था?"

दूसरा पुरुष-(ओठों पर उँगली रख कर) चुप! दीवार के भी कान होते हैं।

स्त्री—(धीमें स्वर में) मैंने सुना था। कह रहा था कि अब जरमनी पर ऐसे तीव्र हवाई हमले होंगे कि जरमनी-निवासी-'दया करो! क्षमा करो!' की चीत्कार मचाने लगेंगे।

तीसरा पुरुष—यहाँ से कहीं टल चलना चाहिए।

स्त्री—कहाँ चला जाय--सभी जगह तो हवाई हमले हो रहे हैं।

दूसरा—किसी देहात में चला जाय। हवाई हमले केवल शहरों पर होते हैं।

स्त्री—मेरी समझ में नहीं आता कि सन्धि क्यों नहीं कर ली जाती।

पहला—सन्धि का नाम न लेना! हमारा फ्यूहरर विजय के लिए लड़ रहा है।

स्त्री—विजय! विजय के तो कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते।

पहला—दिखाई कैसे नहीं पड़ते—शत्रुओं की विजय के लक्षण तो दिखाई पड़ने लगे हैं।

स्त्री—तो उससे हमें क्या सरोकार, हमें तो अपनी विजय से सरोकार है।

पहला-वह सरोकार क्यों नहीं, पहले हम अपनी विजय के लिए लड़ रहे थे—अब शत्रुओं की विजय के लिए लड़ रहे हैं।

स्त्री—शत्रुओं की विजय कैसी? तुम न जाने क्या कह रहे हो।

पहला—अब हम इसलिए लड़ रहे हैं कि शत्रुओं की विजय न होने पावे—अब समझी! हा! हा! हा!

स्थान—एक जर्मन अस्पताल

(एक जख्मी जर्मन सैनिक सन्निपात में बक रहा है)

एक डाक्टर तथा दो नर्स खड़ी हैं।

जख्मी सैनिक—ओफ! कितनी सर्दी! मैं गला जा रहा हूँ। वह देखो मेरी उँगलियाँ गल कर गिर गईं—मैं बन्दूक कैसे चलाऊँगा। मुझे बचाओ। इस सर्दी से बचाओ। (कुछ क्षण चुप रहकर) हिटलर कहाँ है—उसे पकड़ कर मेरे सामने लाओ। उसी पिशाच ने हमें इस मुसीबत में डाला है। हिटलर को पकड़ लाओ—अभी लाओ।

डाक्टर—बड़ी बुरी बात है।

एक नर्स—इसी तरह बकता है।

डाक्टर—अगर यह हिटलर की जगह स्टालिन का नाम लेने लगे तो फिर कोई हर्ज नहीं।

दूसरी नर्स–परन्तु यह अपने होश में थोड़ा है।

डाक्टर—होश में हो या न हो-फ्यूहरर का नाम लेने का इसे कोई हक नहीं—यह तो बगावत है।

पहली—तो फिर क्या किया जाय डाक्टर।

डाक्टर–कोशिश करो कि स्टालिन का नाम लेने लगे।

(डाक्टर जाता है)

[कुछ देर में सैनिक फिर बकने लगता है]

सैनिक—हिटलर को पकड़ लाओ ! अभी मेरे सामने लाओ।

नर्स—स्टालिन का नाम लो स्टिफिन्सन। क्या स्टालिन को पकड़वा कर तुम्हारे सामने लाया जाय ?

सैनिक—स्टालिन ! कौन स्टालिन ! उसने क्या किया। नहीं मैं किसी स्टालिन-विस्टालिन को नहीं जानता। मैं फ्यूहरर को चाहता हूं-- हिटलर को—वही हमारी सब दुर्गति का कारण है। देखो मेरे हाथ की उंगलियाँ गल कर गिर गई हैं।

दूसरी नर्स—हिटलर का नाम मत लो स्टिफिन्सन !

सैनिक—क्यों न लूं—क्या मैं उससे डरता हूँ। जो मौत से नहीं डरता वह किसी से नहीं डरता। हिटलर को लाओ हिटलर को।

(डाक्टर का कमरा)

डाक्टर—तो वह बकना बन्द नहीं करता ?

नर्स—नहीं डाक्टर ! हमने उससे स्टालिन का नाम लेने को कहा, परन्तु वह नहीं माना फ्यूहरर का ही नाम ले रहा है।

डाक्टर—(मेज पर घूंसा मार कर) और उसके आस-पास पड़े हुए सैनिक उसकी यह बकवास सुन रहे हैं।

नर्स चुप खड़ी रही।

डाक्टर—तब तो इसे खत्म करना पड़ेगा।

नर्स—लेकिन वह जरमन है डाक्टर।

डाक्टर—कोई भी हो। उसके बकने का प्रभाव दूसरे सैनिकों पर खराब पड़ेगा।

नर्स—क्या सैनिक नहीं जानते कि वह अपने होश में नहीं है।

डाक्टर—जानते हों, या न जानते हों। चाहे होश में कहे जांय या बेहोशी में-शब्दों में बड़ी ताकत है। एक बेहोश आदमी के शब्द भी अत्यन्त अच्छा-बुरा प्रभाव डाल सकते है।

नर्स—ऐसा तो ओ······।

डाक्टर—चुप रहो। मैं डाक्टर हूँ--मैं इन बातों को तुम से अधिक अच्छा समझ सकता हूँ।

(डाक्टर कागज उठाकर कुछ लिखता है।)

डाक्टर—जाओ, यह दवा उसे पिला दो।

नर्स--(नुसखा देखकर) क्या जहर! ओ! डाक्टर वह एक जरमन है।

डाक्टर—बस खामोश। इस समय वह एक पागल है जो फ्यूहरर का विरोधी है बस हमारे लिए इतना ही काफी है। जाओ!

नर्स—जैसी आज्ञा!

(दूसरे दिन)

(दो आहत सैनिक, जिनके पलरे एक दूसरे के निकट हैं—बात कर रहे हैं)

एक सैनिक—(धीमे स्वर से) स्टिफिन्सन मर गया।

दूसरा सैनिक—हाँ रात में बेचारा चल बसा। उसे सन्निपात भी तो हो गया था।

पहला—न कहीं सन्निपात! वह तो सन्निपात का ढोंग कर रहा था।

दूसरा-क्यों ?

फ्यूहरर के विरुद्ध अपने उद्गार निकालने के लिए। मेरी उसकी सलाह हो चुकी थी। उसने कहा था पहले मैं पागल बनता हूँ—दो तीन

दिन में तुम बन जाना।

दूसरा—अच्छा तो क्या तुम भी पागल बनने वाले थे।

पहला—हाँ

दूसरा—कब से ?

पहला—आज से !

दूसरा—तो आज से बनोगे ?

पहला–ऊँ हुँक ? अब मैंने अपना इरादा बदल दिया है।

दूसरा—सो क्यों ?

पहला–इसलिए कि यह नात्सी पागल को भी नहीं बख्शते।

वाह री होली

होली आ गई ! होली आते ही ऊधम मचने लगा। पता नहीं इस त्योहार में यह क्या बात है कि लोगों की प्रवृत्ति ऊधम तथा शरारत की ओर बहक जाती है। बड़े-बुजुर्ग, गम्भीरता में बौधिसत्व के दर्जे तक पहुँचे हुए लोग भी इस त्योहार पर हँसी मजाक का अनशन तोड़ देते हैं। अपनी अपनी प्रकृति तथा रुचि के अनुसार लोग यह त्योहार मनाने की तैयारी करते हैं। आइये देखें कौन किस धुन में हैं। एक सेठ साहब जिन्होंने कपड़े में खूब चाँदी काटी है अपनी गद्दी पर विराजमान हैं। आस-पास मुनीम तथा अन्य कर्मचारी बैठे हैं। इसी समय एक अन्य दूकान के ब्राह्मण देवता किसी कार्यवश आते हैं। कार्य समाप्त करके जब वह चलने लगते हैं तो सेठ जी से पूछते हैं :—"अबकी होली के लिए क्या क्या इन्तजाम है लाला ?"

लाला बोले—"जो तुम्हारा हुकुम हो।"

"हमारा हुकुम ! तुम तो जानते ही हो लाला, हम तो खाली एक चीज के प्रेमी हैं।"

"भांग के ! क्यों न ?"

"हाँ ? माजूम तो बनवाओगे ही लाला।"

"हां सभी करना पड़ेगा। बिना किये प्राण नहीं बचेंगे।"

"तो हमारा भी खयाल रखना।"

"सो तो रखना ही पड़ेगा।"

ब्राह्मण देवता तो इतनी बात करके चल दिये। इधर लालाजी मुनीम जी से बोले—"पाव भर भाँग मंगा लेना।"

"पाव भर में क्या होगा—ग्राध सेर मंगाग्रो।"

"ग्राध सेर सही। चाहे सुसरी मंहगी हो चाहे सस्ती पर कोई काम बन्द नहीं हो सकता। रंग क्या भाव होगा?"

"क्या जानें—इधर कुछ पता नहीं है।"

"दस-बीस रुपये का रङ्ग भी खर्च हो जायगा।"

"टेसू के फूलों का रंग बनवा लेना—सस्ते में बन जायगा।"

"खाली पीला बनेगा। लड़के तो हरा-लाल मांगेंगे। दो-पिचकारी ग्रावेंगी। पिचकारी भी बड़ी महँगी होंगी।

"सस्ती कौन चीज है लाला।"

"ठीक कहते हो कपड़ा तो सरकार ने सस्ता कर दिया ग्रौर चीज सस्ती नहीं की। हम कपड़े वालों का गला दबा दिया।"

"कपड़ा भी कोई ग्रधिक सस्ता नहीं हुग्रा।"

"हम लोग तो मारे गये। दो पिचकारी ले ग्राना—जरा ग्रच्छे मेल की। ग्राज कल लड़कों के मिजाज भी ग्रासमान पर रहते हैं—ऐसी वैसी चीज पसन्द नहीं ग्राती।"

सेठ जी उन लोगों में हैं जो सब काम करेंगे ग्रौर काफी पैसा खर्च करके करेंगे, परन्तु प्रत्येक कार्य करने के पहले एक बार रो-झींक ग्रवश्य लेंगे।

× × ×

एक महाशय ग्रपनी मित्र मण्डली में विराजमान हैं।

एक मित्र कह रहा है—"होली का त्योहार भी बड़ा मस्त त्योहार है!"

"क्या बात है। इस बार कोई नई बात होनी चाहिए।"

"क्या नई बात होनी चाहिए?"

"बस यह समझ लो कि बस—।"

"वाह भई—यह बस अच्छी रही। क्या बस कुछ मालूम भी तो हो ?"

"कुछ समझ में नहीं आता।"

"कोई नई बात हो ही नहीं सकती। रंग खेलो, खूब भाँग छानो–बस यही होली का त्योहार है।"

"इस साल किसी को बेवकूफ बनाना चाहिए।"

"हाँ जो कुछ शरारत करना हो इस साल कर लो—सम्वत एक से सत्युग लगने वाला है। सत्युग में कुछ न कर पाओगे।"

"सत्युग में होली कैसे मनाई जायगी ?"

"भगवान जाने कैसे मनाई जायगी—जैसे सब मनायेंगे वैसे ही अपने को भी मनानी पड़ेगी।"

"हम तो सत्युग में भी ऐसे ही मनायेंगे।"

"मना पाओगे तब तो मनाओगे।"

"अपने घर में किसी का इजारा है।"

"तो सत्युग आपके घर से बाहर ही रहेगा क्या ?"

"हाँ, केवल होली भर ?"

कुछ देर वार्तालाप करके अन्य सब लोग तो उठ गये केवल एक महाशय रह गये ! उन्होंने एक सोने का जेवर निकाल कर महाशय जी को दिखाया।

महाशय जी ने पूछा—"क्या बात है ?"

"इसे रख लीजिए और पचास रुपये दे दीजिए।"

"क्या करोगे ?"

"करेंगे क्या ? होली का खर्च चाहिए।"

"अच्छा ! पचास रुपये खर्च कर डालोगे।"

"हां इतने तो खर्च ही हो जायंगे—साल भर का त्योहार है।"

"बड़े बेढब हो।"

"हम तो ऐसा ही करते हैं। जो काम करते हैं दिल खोल कर। चार दिन की जिन्दगी है एक दिन मर जायंगे—चले जायंगे। जितने

दिन जीना है—शान से जियेंगे।"

महाशय जी ने पचास रुपये दे दिये। ये लोग उन लोगों में हैं जो लंगोटी में फाग खेलते हैं। इन्हें यह चिन्ता नहीं है कि कल क्या होगा। वर्तमान को देखते हैं और उससे अधिकाधिक लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

× × ×

एक रईस का कमरा। रईस महोदय कुछ लोगों से वार्तालाप कर रहे हैं।

"बाग में किस दिन की होली होगी।" एक ने पूछा।

"जिस दिन चाहेंगे हो जायगी।"

"हीराबाई आवेंगी?"

"क्यों न आवेंगी—वह भी आवेंगी अपनी सहेलियों को भी लावेंगी!" रईस ने कहा।

"तब तो शानदार होली होगी। हौज भराया जायगा?"

"हाँ—टेसू के फूल मंगाये हैं—उन्हीं का रंग बनवाकर भरा देंगे। डब्बे के रंग में बहुत रुपया खर्च होगा।"

"क्या जरूरत है। टेसू का रंग बहुत बढ़िया होता है—बसन्ती।"

"पहले डब्बे का रंग था कहाँ। यही टेसू और अन्य वनस्पतियों के रंग बनते थे।"

"बड़े अच्छे रहते थे। डब्बे के रंग ने उनका चलन ही बन्द कर दिया।"

"डब्बे के रंग सस्ते पड़ने लगे थे इससे उन्हीं का चलन हो गया था। अब रंग मंहगे हैं इस लिए फिर वनस्पतियों का रंग चालू हुआ है।"

"अरे भाई हीराबाई को एक साड़ी देनी पड़ेगी—आजकल साड़ियाँ बड़ी महंगी हैं।"

"दे दीजिएगा कोई—पन्द्रह-बीस में मिल जायगी।"

"पन्द्रह बीस में मामूली मिलेगी।"

"हाँ यह बात तो है।"

"मामूली वह न लेगी।"

"एक हलवाई भी ठीक करना है—

बाग में खाना-पीना होगा।"

"माजूम भी बनवाइयेगा ?"

"रईस महोदय मुँह बनाकर बोले—माजूम ! बनवा लेंगे थोड़ी हो, हमें तो भाँग से प्रेम नहीं है—तुम जानते ही हो।"

"हाँ आपकी तो बोतल चलेगी। लेकिन वह आजकल सब से महँगी है।"

"महँगी हो या सस्ती– बिना उसके तो आनन्द ही न आयेगा।"

"हाँ ! आप तो उसी का व्यवहार करते हैं।"

"भाँग का नशा गधा नशा है, बोतल का नशा बादशाह नशा है।"

"यह तो अपनी अपनी पसन्द है।"

'हाँ पसन्द की बात तो है ही।"

यह रईस महोदय उन लोगों में हैं जिनके प्रत्येक त्योहार तथा खुशी के कार्य में वैश्या तथा मदिरा का समावेश रहता है। जिस प्रकार भोजन के लिए नमक आवश्यक होता है उसी प्रकार इन लोगों की खुशी में वेश्या तथा मदिरा का होना आवश्यक है।

एक नई रोशनी के सज्जन का निवास-स्थान ! यह सज्जन नवीन अचार विचार के हैं। नेता, समाज सुधारक, साहित्यिक– सब कुछ बनने का दावा करते हैं--इनकी मण्डली भी इसी ढंग की है।

"होली आ गई और होली आते ही लोगों ने बकना आरम्भ किया। ऐसा खराब त्योहार है कि भगवान बचावें।"

"इन लोगों को बकने में शरम भी नहीं लगती।"

"त्योहार है--इसमें सब माफ है।"

"मरा ससुरा ऐसा त्योहार। कीचड़ उछालें, फोहश बकें, खामखाह लोगों से छेड़छाड़ करें—यह त्योहार है।"

"इसमें कुछ सुधार होना चाहिए।"

"बिना स्वराज्य हुए, सुधार नहीं हो सकता। जब आर्डिनेन्स लगाया जाय तब सुधार हो और आर्डिनेन्स बिना स्वराज्य हुए लग नहीं सकता।"

"क्यों?"

"ब्रिटिश सरकार को क्या गरज है जो आर्डिनेन्स लगावे। अभी लोग शोर मचाने लगें कि धार्मिक कामों में हस्तक्षेप करती है। अपनी सरकार पर यह धौंस चलेगी नहीं।"

"जितने दिन होली रहती है, घर से निकलना दूभर हो जाता है। निकलो तो दुर्दशा कराओ।"

"हम तो कहीं बाहर चले जायँगे।"

"जहाँ जायँगे वहाँ भी तो होली ही मिलेगी।"

"सब जगह यह बात नहीं है। अन्य जगह केवल एक दिन रंग चलता है—यहाँ की तरह आठ-आठ दिन तक ऊधम नहीं मचता।"

"हाँ यह बात तो है। यहाँ का तो मामला ही दूसरा है। तीन लोक से मथुरा न्यारी।"

"हमारा बस चले तो हम इस त्योहार को ही बन्द करवा दें।"

"देखिये कभी बस चलेगा ही।"

यह सज्जन उन लोगों में हैं जिन्हें सब त्योहार बुरे ही लगते हैं। होली में हुरदङ्ग मचता है इसलिए होली खराब। दिवाली में जुआ खेला जाता है इसलिए दिवाली दो कौड़ी की। दशहरे पर राम-रावण की नकल होती है--यह बुरा है। श्रावणी पर ब्राह्मणों की लूट होती है इसलिए वह भी रद्दी। कोई त्योहार आता है तो इन महाशय का खून जलता है, परन्तु मजबूर हैं बस नहीं चलता। स्वराज्य की प्रतीक्षा में हैं, क्योंकि स्वराज्य में ये सब त्योहार बन्द करा दिये जायँगे। जब सब त्योहार बन्द हो जायँगे तब यह महाशय सन्तोष की सांस लेंगे।

अवसरवाद

(१)

रायबहादुर साहब अपने हवाली-मवालियों सहित विराजमान थे। इसी समय एक अन्य महोदय पधारे। इन्हें देखकर रायबहादुर साहब मुस्कराकर बोले—"आओ भई वर्माजी ! कहो क्या समाचार है?"

"समाचार अच्छे हैं, गांधी-जयन्ती की सजावट हो रही है।"

"भई एक बात समझ में नहीं आती। गांधी-जयन्ती तो प्रतिवर्ष आती है, परन्तु इस बार जितनी धूमधाम है उतनी पहले कभी नहीं हुई। इस बार की जयन्ती में क्या खसूसियत है?" रायबहादुर साहब ने पूछा।

एक सज्जन बोले—"भई यह तो कोई कांग्रेस वाला ही बता सकता है।"

"भई वजह कुछ भी हो, लेकिन लोगों में उत्साह खूब है।"

"उत्साह तो हुआ ही चाहे और होना भी चाहिए।"

"गांधीजी जब पचास वर्ष के हुए थे तब कुछ हुआ था?"

"खयाल नहीं पड़ता। उस दफा तो अवश्य हुआ होगा।"

"हमें तो खयाल नहीं पड़ता कि कुछ हुआ था।"

"पिछली बातों को छोड़िये। इस बार आप रोशनी करेंगे?"

"आप लोग सलाह दीजिए।"

"इसमें सलाह की क्या आवश्यकता—जैसी आपकी श्रद्धा हो!"

"रोशनी करें तो सजावट भी करें।"

"हाँ फाटक-वाटक बनवाना चाहिए।"

"रोशनी न करेंगे तो——।"

"तो क्या?"

"लोग बुरा मानेंगे।"

"और आगे कांग्रेस मिनिस्ट्री भी आ रही है—यह याद रखिये।"

रायबहादुर साहब बोले—"अरे यारो कोई ऐसा डौल नहीं लग सकता कि हमें कांग्रेस एसेम्बली के लिए खड़ा कर दे।"

"इसकी केवल एक तरकीब है।"

"वह क्या?"

"रायबहादुरी का खिताब त्याग दीजिये और जयन्ती पर खूब सजावट और रोशनी कीजिए।"

"रायबहादुरी का खिताब त्यागने को बात गलत है।"

"बिना खिताब छोड़े तो कांग्रेस आपको खड़ा नहीं करेगी।"

"कहीं ऐसा न हो कि दोनों दीन से गये पाँड़े न हलवा मिला न माँड़े। खिताब भी छोड़ें और एसेम्बली की सीट भी न मिले।"

"हिन्दू सभा की ओर से खड़े होने पर भी खिताब त्यागना पड़ेगा।"

"एक काम कीजिए कि खिताब तो त्याग दीजिए और कांग्रेसियों से मेल बढ़ाइये। प्रयत्न कीजिये—बिना प्रयत्न किए कुछ न होगा।"

"खिताब छोड़ते बड़ा कष्ट होता है।"

"सो तो होता होगा—बड़े कष्ट से मिला भी तो होगा।"

"क्या पूछते हो। न जाने कितना रुपया खर्च हुआ और कितनी दौड़-धूप की गई तब कहीं यह खिताब मिला है।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु यदि एम० एल० ए० बना चाहिए तो खिताब छोड़ना ही पड़ेगा।"

"कोई ऐसी तरकीब नहीं निकल सकती कि खिताब न छोड़ना पड़े और एसेम्बली में भी पहुँच जायँ।"

"हमारी समझ में तो ऐसी कोई तरकीब नहीं निकल सकती।"

"खिताब छोड़ने पर हाकिम लोग नाराज होजायँगे।"

"हाँ नाराज तो अवश्य होंगे, पर आपका क्या कर लेंगे ?"

"अरे भई कभी कोई काम पड़ा तो कलक्टर साहब बात भी न करेंगे।"

"यदि आप एम० एल० ए० हो गये तो हुक्काम लोग आपको खुशामद करेंगे—यह भी तो देखिये।"

"हाँ यह बात तो पक्की है।"

"तो बस फिर हटाइये झगड़ा।"

"अच्छा आज जरा इस पर विचार कर लें।"

(२)

रायबहादुर साहब ने खूब सोच-विचार करके खिताब छोड़ देना ही निश्चय किया। अतः उन्होंने रायबहादुरी का खिताब त्याग दिया। एक दिन नगर-निवासियों ने एक स्थानीय पत्र में यह समाचार बड़े आश्चर्य के साथ पढ़ा कि रायबहादुर सम्पत्तिलाल ने अपना खिताब वापस कर दिया और कांग्रेस में सम्मिलित हो गये।

इस समाचार के प्रकाशित होते ही संपत्तिलाल के पास बधाइयाँ आने लगीं। कुछ काँग्रेसी बधाई देने गये। सम्पत्तिलाल ने उनकी बड़ी खातिर की। इस प्रकार कांग्रेसी लोगों का आवागमन सम्पत्तिलाल के यहाँ हो गया और घनिष्ठता उत्पन्न हो गई। अब सम्पत्तिलाल खद्दर-धारी हो गये।

क्रमशः यह नियम हो गया कि कदाचित ही कोई ऐसा अशुभ दिन जाता हो जब कि चार-छः कांग्रेसी सम्पत्तिलाल के यहाँ भोजन न करते हों। दो-चार ने तो समय ताक लिया था। सम्पत्तिलाल के यहाँ भोजन के समय पहुँच जाते थे।

एक दिन सम्पत्तिलाल बोले—"यदि एसेम्बली के लिए हम खड़े हों तो कैसा।"

"वाहवा! बड़ा अच्छा रहे आप जैसों को तो जाना ही चाहिए।"

"परन्तु कांग्रेस हमें अपना केंडीडेट चुन लेगी ?"

"आप ने इतना त्याग किया है, खिताब छोड़ा, खद्दर धारण किया, अब तो आपको चुनने में कोई आपत्ति न होना चाहिए।"

"आप लोग प्रयत्न करें तो सम्भव हो सकता है।"

"कांग्रेसी भाई आपस में परामर्श करके बोले "एक काम कीजिए! प्रान्त के दो बड़े नेताओं को अपने यहाँ निमंत्रित कीजिए।"

"निमंत्रित करने का कोई अवसर भी तो होना चाहिए।"

"अवसर तो गांधी-जयन्ती के रूप में आ रहा है। खूब सजावट, रोशनी, इत्यादि कीजिए। उसी में कोई ऐसी बात रख दीजिये कि जिसमें उनको बुलाया जा सके।"

"वही तो सोचना है।"

"केवल मीटिंग रखने से तो काम चलेगा नहीं।"

"कोई उद्घाटन हो तो काम बन जाय।"

"न हो गांधी जयन्ती के स्मारक रूप एक गांधी पुस्तकालय ही स्थापित कर दीजिए।"

"यह काम सब से सरल है।"

"हाँ यह हमारे लिए सरल है। अपने किसी मकान का थोड़ा भाग पुस्तकालय के लिए दे दें और हमारे यहाँ अपना निजी पुस्तकालय हुई है वह उठवा कर वहाँ रखवा दें।"

"वाहवा! यह तो बड़ी सरलता-पूर्वक हो जायगा।"

"तो फिर इसके लिए अभी से तैयारी की जाय।"

चार दिन पश्चात स्थानीय पत्रों में समाचार निकला।

"श्री सम्पत्तिलाल जी की उदारता! हमारे नगर के गण्यमान रईस श्री सम्पत्तिलाल जी, जो अपना रायबहादुरी का खिताब त्याग कर कांग्रेस में सम्मिलित हो गए हैं गान्धी-जयन्ती के पुण्यावसर पर 'गांधी पुस्तकालय' की स्थापना करेंगे। पुस्तकालय का उद्घाटन किसी प्रान्तीय नेता द्वारा होगा।"

यह समाचार निकलने के बाद प्रान्तीय नेताओं के पास दौड़ होने

लगी। कुछ खाऊ वीर कांग्रेसमैनों की बन आई! सेकेन्ड क्लास का किराया तथा होटल-खर्च लेकर प्रान्तीय नेताओं के पास जाने लगे। एक बार के जाने में कार्य नहीं हुआ, तीन-तीन चार-चार बार जाना पड़ा। कभी कोई नेता मिला नहीं, कभी अस्वस्थ मिला, कभी सोच कर उत्तर देने को कहा।

अन्ततोगत्वा काफी दौड़-धूप होने के पश्चात एक नेता महोदय को पुस्तकालय का उद्घाटन करने के लिए राजी कर लिया।

भूतपूर्व रायबहादुर साहब ने खूब सजावट की। रोशनी का प्रबन्ध भी अच्छा किया। गांधी-जयन्ती वाले दिन बड़े धूमधाम से पुस्तकालय का उद्घाटन-कार्य सम्पन्न किया गया। पार्टी भी हुई जिसमें नगर के सभी कांग्रेसी तथा अन्य प्रतिष्ठित नागरिक सम्मिलित हुए।

नगर कांग्रेस कमेटी के एक पदाधिकारी ने सम्पत्तिलाल जी से कहा—"अब आपके एम० एल० ए० होने में कोई सन्देह नहीं रहा।"

सम्पत्तिलाल जी बड़े प्रसन्न! उनकी कोठी निठल्ले कांग्रेसियों का अड्डा बन गया। जब देखिए दो-चार डटे हैं और राजनीति पर बहस तथा वार्तालाप हो रहा है।

राजनीति को छोड़कर अन्य किसी विषय पर बात करना हराम था! कभी गांधी जी पर बात हो रही है, कभी नेहरू जी की चर्चा चल रही है, कभी पटेल की मीमान्सा हो रही है, कभी ब्रिटिश सरकार की भावी नीति पर अटकलें लगाई जा रही हैं, कभी कम्यूनिस्टों को कोसा जा रहा है, कभी नौकरशाही की आलोचना हो रही है! राजनीति सम्बन्धी कोई ऐसा विषय या विख्यात व्यक्ति न होगा जिस पर इन लोगों की अपनी निजी राय न हो। भोजन करने बैठे हैं—एक कौर खाकर जब तक पांच मिनिट राजनीति पर बात न हो जाय तब तक दूसरा कौर उठाना हराम। इन लोगों की सङ्गत में सम्पत्तिलाल भी अपने को नेता समझने लगे। स्थानीय पत्रों में आपके छोटे-मोटे वक्तव्य भी निकलने लगे। किसी दिन कांग्रेस को वोट देने की अपील निकल रही है, किसी दिन अनाज और कपड़े की दिक्कत पर सम्पत्तिलाल जी

वक्तव्य दे रहे हैं, किसी दिन लार्ड वेवल को समझा रहे हैं, किसी दिन ब्रिटिश सरकार का मार्ग प्रदर्शन कर रहे हैं, किसी दिन हिन्दूसभा पर, किसी दिन कम्यूनिस्टों पर—इस प्रकार प्रायः नित्य ही सम्पत्तिलाल जी का कोई न कोई वक्तव्य प्रकाशित होता रहता था। जनता ने भी जाना कि भूतपूर्व रायबहादुर साहब नये मुसलमान की भाँति प्याज ! प्याज !! चिल्ला रहे हैं।

(३)

इधर ज्यों ज्यों चुनाव के नामिनेशन की तारीख निकट आती जाती थी, सम्पत्तिलाल का उत्साह बढ़ता जाता था। खाऊवीर काँग्रेसमैनों की दौड़ लग रही थी। कोई इलाहाबाद की यात्रा करता था, कोई लखनऊ, कोई बम्बई इत्यादि तक पहुँचा। इस प्रकार सम्पत्तिलाल जी के लिए बड़ी दौड़-धूप हो रही थी।

एक दिन सम्पत्तिलाल जी को सूचना दी गई कि "आपके नाम की प्रान्तीय काँग्रेस-कमेटी ने सिफारिश कर दी है।"

सम्पत्तिलाल जी अपने अकाँग्रेसी अन्तरङ्ग मित्रों में बैठकर कहते—"जान पड़ता है एसेम्बली में जाना ही पड़ेगा।"

"अच्छा है ! हम लोगों को बल मिल जायगा।"

"मेरी तो विशेष इच्छा नहीं थी, परन्तु प्रान्तीय काँग्रेस-कमेटी बहुत जोर डाल रही है। उसने तो एक प्रकार से मुझे भेजना निश्चित भी कर लिया है।"

"देखा आपने, खिताब छोड़ने से यह बात हुई।"

"खिताब तो मैं स्वयं ही छोड़ना चाहता था अब आज कल राष्ट्रीय दृष्टि से इन खिताबों का कोई मूल्य नहीं रहा।"

"इसमें क्या सन्देह है। परन्तु एम० एल० ए० होकर हमारा खयाल रखिएगा।"

"और तो हमारी कोई इच्छा नहीं, हमारे लड़के को कोई बढ़िया नौकरी दिलवा दीजिएगा।"

"हमें तो कोई सरकारी ठेका-वेका दिलवा देना !"

सम्पत्तिलाल बोले—"आप लोगों के लिए तो जा ही रहा हूँ अन्यथा मुझे अपने लिए क्या आवश्यकता है !"

"आपको किस बात की कमी है। आप तो जो कुछ करेंगे परोपकार के लिए ही करेंगे।"

"परोपकार और देश-सेवा—यही मेरे दो लक्ष्य हैं।"

परन्तु जब चुनाव की नामावली प्रकाशित हुई तो उसमें सम्पत्तिलाल जी का नाम न था। सम्पत्तिलाल तो मानों आकाश से गिरे।

कांग्रेस वालों से पूछा—"यह क्या गड़बड़ हुआ ?"

"क्या बतावें ! कुछ समझ में नहीं आता।"

"आप लोग तो कह रहे थे कि आपका नाम आ जायगा।"

"अजी कुछ कहा नहीं जाता। सब मामला तय हो गया था, न जाने बीच में क्या घपला हो गया।"

भूतपूर्व रायबहादुर साहब की सब आशाएँ मिट्टी में मिल गईं। काँग्रेसियों का आना-जाना भी कम हो गया। काँग्रेसियों के सम्बन्ध में भूतपूर्व रायसाहब की राय अब बहुत अधिक अच्छी नहीं है।

सुना गया है कि सम्पत्तिलाल जी आजकल अपना समय राम-भजन में अधिक व्यतीत करते हैं।

रक्षा-बंधन

(१)

'माँ, मैं भी राखी बाँधूँगी।'

श्रावण की धूम-धाम है। नगरवासी स्त्री-पुरुष बड़े आनन्द तथा उत्साह से श्रावणी का उत्सव मना रहे हैं। बहनें भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के राखियाँ बाँध-बाँध कर चाँदी कर रहे हैं। ऐसे ही समय एक छोटे-से घर में दस वर्ष की बालिका ने अपनी माता से कहा—माँ मैं भी राखी बाँधूँगी।

उत्तर में माता ने एक ठन्डी साँस भरी और कहा—किसके बाँधेगी बेटी—आज तेरा भाई होता, तो....।

माता आगे कुछ न कह सकी। उसका गला रुँध गया और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए।

अबोध बालिका ने अठलाकर कहा—तो क्या भइया के ही राखी बाँधी जाती है और किसी के नहीं? भइया नहीं है तो अम्मा, मैं तुम्हारे ही राखी बाँधूँगी।

इस दुःख के समय भी पुत्री की बात सुनकर माता मुसकराने लगी और बोली—अरी तू इतनी बड़ी हो गई—भला कहीं मां के भी राखी बाँधी जाती है।

बालिका ने कहा—वाह, जो पैसा दे, उसी के राखी बांधी जाती है।

माता—अरी कँगली! पैसे भर नहीं—भाई के ही राखी बांधी जाती है।

बालिका उदास हो गई।

माता घर का काम-काज करने लगी। घर का काम शेष करके उसने पुत्री से कहा—आ तुझे न्हिला (नहला) दूँ।

बालिका मुख गम्भीर करके बोली—मैं नहीं नहाऊँगी।

माता—क्यों, नहावेगी क्यों नहीं ?

बालिका—मुझे क्या किसी के राखी बाँधनी है ?

माता—अरी राखी नहीं बाँधनी है, तो क्या नहावेगी भी नहीं। आज त्योहार का दिन है। चल उठ नहा।

बालिका—राखी नहीं बाँधूँगी तो तिवहार काहे का ?

माता—(कुछ क्रुद्ध होकर) अरी कुछ सिड़न हो गई है। राखी-राखी रट लगा रक्खी है। बड़ो राखी बाँधने वाली है। ऐसी ही होती तो आज यह दिन देखना पड़ता। पैदा होते ही बाप को खा बैठी। ढाई बरस की होते-होते भाई का घर छुड़ा दिया। तेरे ही कर्मों से सब नास (नाश) हो गया।

बालिका बड़ी अप्रतिभ हुई और आंखों में आंसू भरे हुए चुपचाप नहाने को उठ खड़ी हुई।

* * *

एक घन्टा पश्चात् हम उसी बालिका को उसके घर के द्वार पर खड़ी देखते हैं। इस समय भी उसके सुन्दर मुख पर उदासी विद्यमान है। अब भी उसके बड़े बड़े नेत्रों में पानी छलछला रहा है।

परन्तु बालिका इस समय द्वार पर क्यों ? जान पड़ता है, वह किसी कार्यवश खड़ी है, क्योंकि उसके द्वार के सामने से जब कोई निकलता है, तब वह बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर ताकने लगती है। मानो वह मुख से कुछ कहे बिना केवल इच्छा-शक्ति ही से, उस पुरुष का ध्यान

अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करती थी; परन्तु जब उसे इसमें सफलता नहीं होती, तब उसकी उदासी बढ़ जाती है।

इसी प्रकार एक, दो, तीन करके कई पुरुष, बिना उसकी ओर देखे, निकल गए।

अन्त को बालिका निराश होकर घर के भीतर लौट जाने को उद्यत ही हुई थी कि एक सुंदर युवक की दृष्टि, जो कुछ सोचता हुआ धीरे-धीरे जा रहा था, बालिका पर पड़ी। बालिका की आँखें युवक की आँखों से जा लगीं। न जाने उन उदास तथा करुणा-पूर्ण नेत्रों में क्या जादू था कि युवक ठिठक कर खड़ा हो गया और बड़े ध्यान से सिर से पैर तक देखने लगा। ध्यान से देखने पर युवक को ज्ञात हुआ कि बालिका की आँखें अश्रुपूर्ण हैं। तब वह अधीर हो उठा। निकट जाकर पूछा—बेटी क्यों रोती हो?

बालिका इसका कुछ उत्तर न दे सकी, परन्तु उसने अपना एक हाथ युवक की ओर बढ़ा दिया। युवक ने देखा, बालिका के हाथ में एक लाल डोरा है। उसने पूछा—यह क्या है? बालिका ने आँखें नीची करके उत्तर दिया—राखी! युवक समझ गया। उसने मुस्कराकर अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया।

बालिका का मुख-कमल खिल उठा। उसने बड़े चाव से युवक के हाथ राखी बाँध दी।

राखी बँधवा चुकने पर युवक ने जेब में हाथ डाला और दो रुपये निकाल कर बालिका को देने लगा; परन्तु बालिका ने उन्हें लेना स्वीकार न किया। बोली—नहीं, पैसे दो।

युवक—ये पैसे से भी अच्छे हैं।

बालिका—नहीं—मैं पैसे लूँगी, यह नहीं।

युवक—ले लो बिटिया। इसके पैसे मँगा लेना। बहुत-से मिलेंगे।

बालिका—नहीं, पैसे दो।

युवक ने चार आने पैसे निकाल कर कहा—अच्छा ले पैसे भी ले और यह भी ले।

बालिका—नहीं, खाली पैसे लूँगी।

तुझे दोनों लेने पड़ेंगे—यह कह कर युवक ने बलपूर्वक पैसे तथा रुपये बालिका के हाथ पर रख दिए।

इतने में घर के भीतर से किसी ने पुकारा—अरी सरसुती (सरस्वती) कहाँ गई ?

बालिका ने—आई-कहकर युवक की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि डाली और चली गई।

२

गोलागञ्ज (लखनऊ) की एक बड़ी तथा सुन्दर अट्टालिका के एक सुसज्जित कमरे में एक युवक चिंता-सागर में निमग्न बैठा है! कभी वह ठण्डी साँसें भरता है, कभी रूमाल से आँखें पोंछता है, कभी आप-ही-आप कहता है—हा! सारा परिश्रम व्यर्थ गया। सारी चेष्टाएँ निष्फल हुईं। क्या करूं। कहाँ जाऊं उन्हें कहाँ ढूंढूँ। सारा उन्नाव छान डाला; परन्तु फिर भी पता न लगा।—युवक आगे कुछ और कहने को था कि कमरे का द्वार धीरे-धीरे खुला और एक नौकर अन्दर आया।

युवक ने कुछ विरक्त होकर पूछा—क्यों, क्या है ?

नौकर—सरकार अमरनाथ बाबू आये हैं।

युवक—(सम्भलकर) अच्छा यहीं भेज दो।

नौकर के चले जाने पर युवक ने रूमाल से आँखें पोंछ डालीं और मुख पर गम्भीरता लाने की चेष्टा करने लगा।

द्वार फिर खुला और एक युवक अन्दर आया।

युवक—आओ भाई अमरनाथ !

अमरनाथ—कहो घनश्याम, आज अकेले कैसे बैठे हो ? कानपुर से कब लौटे ?

घनश्याम—कल आया था।

अमरनाथ—उन्नाव भी अवश्य ही उतरे होंगे ?

घनश्याम—(एक ठण्डी साँस भरकर) हाँ उतरा था; परन्तु व्यर्थ। वहाँ अब मेरा क्या रखा है ?

अमरनाथ—परन्तु करो क्या। हृदय नहीं मानता है—क्यों ? और सच पूछो तो बात ही ऐसी है। यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होता, तो मैं भी ऐसा ही करता।

घनश्याम—क्या कहूँ मित्र, मैं तो हार गया। तुम तो जानते ही हो कि मुझे लखनऊ आकर रहे एक वर्ष हो गया और जब से यहाँ आया हूँ उन्हें ढूँढ़ने में कुछ भी कसर उठा नहीं रखी; परन्तु सब व्यर्थ।

अमरनाथ—उन्होंने उन्नाव न जाने क्यों छोड़ दिया और कब छोड़ा—इसका भी कोई पता नहीं चलता।

घनश्याम—इसका तो पता चल गया न, कि वे लोग मेरे चले जाने के एक वर्ष पश्चात् उन्नाव से चले गए; परन्तु कहाँ गये, यह नहीं मालूम।

अमरनाथ—यह किससे मालूम हुआ ?

घनश्याम—उसी मकान वाले से, जिसके मकान में हम लोग रहते थे।

अमरनाथ—हा शोक !

घनश्याम—कुछ नहीं, यह सब मेरे ही कर्मों का फल है। यदि मैं उन्हें छोड़कर न जाता; यदि गया था, तो उनकी खोज-खबर लेता रहता। परन्तु मैं तो दक्षिण जाकर रुपया कमाने में इतना व्यस्त रहा कि कभी याद ही न आई। और जो आई भी, तो क्षणमात्र के लिए। उफ, कोई भी अपने घर को भूल जाता है। मैं ही ऐसा अधम—

अमरनाथ—(बात काटकर) अजी नहीं, सब समय की बात हैं।

घनश्याम—मैं दक्षिण न जाता, तो अच्छा था।

अमरनाथ—तुम्हारा दक्षिण जाना तो व्यर्थ नहीं हुआ। यदि न जाते तो इतना धन....।

घनश्याम—अजी चूल्हे में जाय धन। ऐसा धन किस काम का। मेरे हृदय में सुख-शान्ति नहीं तो धन किस मर्ज की दवा है।

अमरनाथ—एँ, हाथ में लाल डोरा क्यों बांधा है ?

घनश्याम—इसकी तो बात ही भूल गया। यह राखी है।

अमरनाथ—भई वाह, अच्छी राखी है। लाल डोरे को राखी बताते हो। यह किसने बाँधी है। किसी बड़े कन्जूस ब्राह्मण ने बाँधी होगी। दुष्ट ने एक पैसा तक खरचना पाप समझा। डोरे ही से काम निकाला।

घनश्याम—संसार में यदि कोई बढ़िया-से-बढ़िया राखी बन सकती है, तो मुझे उससे भी कहीं अधिक प्यारा यह लाल डोरा है।----यह कह कर घनश्याम ने उसे खोलकर बड़े यत्नपूर्वक अपने बक्स में रख लिया।

अमरनाथ—भई तुम भी विचित्र मनुष्य हो। आखिर यह डोरा बाँधा किसने है ?

घनश्याम—एक बालिका ने।

पाठक समझ गए होंगे कि घनश्याम कौन है।

अमरनाथ- बालिका ने कैसे बाँधा और कहाँ ?

घनश्याम—कानपुर में।

घनश्याम ने सारी घटना कह सुनाई।

अमरनाथ—यदि यह बात है, तो सत्य ही यह डोरा अमूल्य है।

घनश्याम —न जाने क्यों उस बालिका का ध्यान मेरे मन से नहीं उतरता।

अमरनाथ--उसकी सरलता तथा प्रेम ने तुम्हारे हृदय पर प्रभाव डाला है। भला उसका नाम क्या है ?

घनश्याम--नाम तो मुझे नहीं मालूम। भीतर से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा था; परन्तु मैं सुन न सका।

अमरनाथ- अच्छा, खैर। अब तुमने क्या करना विचारा है ?

घनश्याम—धैर्य धर कर चुपचाप बैठने के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता हूँ। मुझसे जो हो सका, मैं कर चुका।

अमरनाथ—हाँ, यही ठीक भी है। ईश्वर पर छोड़ दो ! देखो क्या होता है।

३

पूर्वोक्त घटना हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। घनश्यामदास पिछली बातें प्राय: भूल गए हैं; परन्तु उस बालिका की याद कभी-कभी आ जाती है। उसे देखने वे एक बार कानपुर गए भी थे; परन्तु उसका पता न चला। उस घर में पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह वहाँ से, अपनी माता सहित बहुत दिन हुए, न जाने कहाँ चली गई। इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उसका ध्यान भी कम होता गया, पर अब भी जब वे अपना बक्स खोलते हैं, तब कोई वस्तु देखकर चौंक पड़ते हैं और साथ ही कोई पुराना दृश्य भी आँखों के सामने आ जाता है।

घनश्याम अभी तक अविवाहित हैं। पहले तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि विवाह करेंगे ही नहीं; पर मित्रों के कहने और स्वयं अपने अनुभव ने उनका विचार बदल दिया। अब वे विवाह करने पर तैयार हैं; परन्तु अभी तक कोई कन्या उनकी रुचि के अनुसार नहीं मिली!

जेठ का महीना है। दिन-भर की जला देने वाली धूप के पश्चात् सूर्यास्त का समय अत्यन्त सुखदायी प्रतीत हो रहा है। इस समय घनश्यामदास अपनी कोठी के बाग में मित्रों सहित बैठे मन्द-मन्द शीतल वायु का आनन्द ले रहे हैं। आपस में हास्यरस-पूर्ण बातें हो रही हैं। बातें करते-करते एक मित्र ने कहा—अजी अभी तक अमरनाथ नहीं आए?

घनश्याम—वह मनमौजी आदमी है। कहीं रम गया होगा।

दूसरा—नहीं रम नहीं, वह आजकल तुम्हारे लिए दुलहन ढूँढ़ने की चिंता में रहता है।

घनश्याम—बड़े दिल्लगी-बाज हो।

दूसरा—नहीं, दिल्लगी की बात नहीं है।

तीसरा—हाँ, परसों मुझसे भी वह कहता था कि घनश्याम का विवाह जाय, तो मुझे चैन पड़े।

ये बातें हो ही रही थीं कि अमरनाथ लपकते हुए आ पहुँचे।

घनश्याम—आओ यार, बड़ी उमर—अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी।

अमरनाथ—इस समय बोलिये नहीं, नहीं एकाध को मार बैठूँगा।

दूसरा—जान पड़ता है, कहीं से पिट कर आए हो।

अमरनाथ—तू फिर बोला—क्यों ?

दूसरा—क्यों, बोलना किसी के हाथ बेच खाया है ?

अमरनाथ—अच्छा, दिल्लगी छोड़ो। एक आवश्यक बात है।

सब उत्सुक होकर बोले—कहो, कहो, क्या बात है ?

अमरनाथ—(घनश्याम से) तुम्हारे लिए दुलहन ढूँढ़ ली है।

सब—(एक स्वर से) फिर क्या, तुम्हारी चाँदी है !

अमरनाथ—फिर वही दिल्लगी। यार तुम लोग अजीब आदमी हो !

तीसरा—अच्छा बताओ, कहाँ ढूँढ़ी ?

अमरनाथ—यहीं, लखनऊ में।

दूसरा—लड़की का पिता क्या करता है ?

अमरनाथ—पिता तो स्वर्गवास करता है।

तीसरा—यह बुरी बात है।

अमरनाथ—लड़की है और उसकी माँ। बस, तीसरा कोई नहीं। विवाह में कुछ मिलेगा भी नहीं। लड़की की माता बड़ी गरीब है।

दूसरा—यह उससे भी बुरी बात है।

तीसरा—उल्लू मर गये, पट्ठे छोड़ गए। घर भी ढूँढ़ा तो गरीब। कहाँ हमारे घनश्याम इतने धनाढ्य और कहाँ ससुराल इतनी दरिद्र ! लोग क्या कहेंगे ?

अमरनाथ—अरे भाई, कहने और न कहने वाले हमीं तुम हैं। और यहाँ उनका कौन बैठा है जो कहेगा।

घनश्यामदास ने एक ठन्डी साँस ली।

तीसरा—आपने क्या भलाई देखी, जो यह सम्बन्ध करना

विचारा है ?

अमरनाथ—लड़की की भलाई। लड़की लक्ष्मी-रूपा है। जैसी सुन्दर वैसी सरल। ऐसी लड़की यदि दीपक लेकर ढूँढ़ी जावे, तो भी कदाचित ही मिले।

दूसरा—हाँ, यह अवश्य एक बात है।

अमरनाथ—परन्तु लड़की की माता लड़का देखकर विवाह करने को कहती है।

तीसरा—यह तो व्यवहार की बात है।

घनश्याम—और, मैं भी लड़की देखकर विवाह करूँगा।

दूसरा—यह भी ठीक ही है।

अमरनाथ—तो इसके लिए क्या विचार है ?

तीसरा—विचार क्या! लड़की देखेंगे।

अमरनाथ—तो कब ?

घनश्याम—कल।

(४)

दूसरे दिन शाम को घनश्याम और अमरनाथ गाड़ी पर सवार होकर लड़की देखने चले। गाड़ी चक्कर खाती हुई यहियागंज की एक गली के सामने जा खड़ी हुई। गाड़ी से उतर कर दोनों मित्र गली में घुसे। लगभग सौ कदम चलकर अमरनाथ एक छोटे से मकान के सामने खड़े हो गये और मकान का द्वार खटखटाया।

घनश्याम बोले—मकान देखने से तो बड़े गरीब जान पड़ते हैं।

अमरनाथ—हाँ, बात तो ऐसी ही है, परन्तु यदि लड़की तुम्हारे पसन्द आ जाय, तो यह सब सहन किया जा सकता है।

इतने में द्वार खुला और दोनों भीतर गये। सन्ध्या हो जाने के कारण मकान में अँधेरा हो गया था; अतएव ये लोग द्वार खोलने वाले को स्पष्ट न देख सके।

एक दालान में पहुँचने पर ये दोनों चारपाइयों पर बिठा दिए गए और बिठाने वाली ने, जो स्त्री थी, कहा—मैं जरा दिया जला लूँ।

अमरनाथ—हाँ, जला लो।

स्त्री ने दीपक जलाया और पास ही एक दीवार पर उसे रख दिया, फिर इनकी ओर मुख करके वह नीचे चटाई पर बैठ गई, परन्तु ज्योंही उसने घनश्याम पर अपनी दृष्टि डाली—एक हृदयभेदी आह उसके मुख से निकली—और वह ज्ञानशून्य होकर गिर पड़ी।

स्त्री की ओर कुछ अँधेरा था, इस कारण उन लोगों को उसका मुख स्पष्ट न दिखाई पड़ता था। घनश्याम उसे उठाने को उठे; परन्तु ज्यों ही उन्होंने उसका सिर उठाया और रोशनी उसके मुख पर पड़ी, त्यों ही घनश्याम के मुख से निकला—मेरी माता—और उठकर वे भूमि पर बैठ गए।

अमरनाथ विस्मित हो काष्ठवत बैठे रहे। अन्त को कुछ क्षण उपरान्त बोले—उफ, ईश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है! जिनके लिए न जाने तुमने कहाँ-कहाँ की ठोकरें खाईं, वे अन्त को इस प्रकार मिले।

घनश्याम अपने को सँभाल कर बोले—थोड़ा पानी मँगाओ।

अमरनाथ—किससे मंगाऊँ। यहां तो कोई और दिखाई ही नहीं पड़ता, परन्तु हाँ वह लड़की तुम्हारी—कहते अमरनाथ रुक गए। फिर उन्होंने पुकारा—बिटिया, थोड़ा पानी दे जाओ।—परन्तु कोई उत्तर न मिला।

अमरनाथ ने फिर पुकारा—बेटी, तुम्हारी माँ अचेत हो गई हैं। थोड़ा पानी दे जाओ।

इस 'अचेत' शब्द में न जाने क्या बात थी कि तुरन्त ही घर के दूसरी ओर बरतन खड़कने का शब्द हुआ। तत्पश्चात एक पूर्णवयस्का लड़की लोटा लिए आई। लड़की मुंह कुछ ढँके हुए थी। अमरनाथ ने पानी लेकर घनश्याम की माता की आँखें तथा मुख धो दिया। थोड़ी देर में उसे होश आया। उसने आँखें खोलते ही फिर घनश्याम को देखा। तब वह शीघ्रता से उठ कर बैठ गई और बोलीं—एँ, मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ! घनश्याम क्या तू मेरा खोया हुआ घनश्याम है? या कोई और?

माता ने पुत्र को उठाकर छाती से लगा लिया और अश्रु बिन्दु विसर्जन किए, परन्तु वे बिन्दु सुख के थे अथवा दुःख के कौन कहे ?

लड़की ने यह सब देख-सुनकर अपना मुँह खोल दिया और भैया-भैया कहती हुई घनश्याम से लिपट गई। घनश्याम ने देखा—लड़की कोई और नहीं, वही बालिका है, जिसने पाँच वर्ष पूर्व उनके राखी बाँधी थी और जिसकी याद प्रायः उन्हें आया करती थी।

* * *

श्रावण का महीना है और श्रावणी का महोत्सव। घनश्यामदास की कोठी खूब सजाई गई है। घनश्याम अपने कमरे में बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे हैं। इतने में एक दासी ने आकर कहा—बाबू भीतर चलो।—घनश्याम भीतर गए। माता ने उन्हें एक आसन पर बिठाया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उनके तिलक लगाकर राखी बांधी। घनश्याम ने दो अशर्फियाँ उनके हाथ में धर दीं और मुस्कराकर बोले—क्या पैसे भी देने होंगे ?

सरस्वती ने हँसकर कहा—नहीं भैया, ये अशर्फियाँ पैसों से अच्छी हैं। इनसे बहुत-से पैसे आवेंगे।

मनुष्य

बर्मा से आसाम आने वाली सड़क पर शरणार्थियों के झुण्ड चले आरहे थे। इनमें जवान, बूढ़े, बच्चे तथा स्त्रियाँ—सभी प्रकार के मनुष्य थे। इसी समय एक मोटरकार जो तेजा के साथ चली आ रही थी सहसा धीमी होकर रुक गई। इस कार को एक साहबी ठाट-बाट के हिंदुस्तानी सज्जन चला रहे थे। इनके बराबर एक १३, १४ वर्ष का बालक था, यह भी सूट-बूट तथा सोला हैट पहने था। पीछे की सीट पर एक प्रौढ़ तथा एक युवती बैठी थी। कार खड़ी होते ही ड्राइव करने वाले प्रौढ़ सज्जन का चेहरा पीला पड़ गया। उन्होंने घबरा कर कहा "पैट्रोल खत्म हो गया-अब क्या किया जाय।"

कार खड़ी होते ही उसे पैदल चलने वाले कुछ लोगों ने घेर लिया। एक बुड्ढा बोला—"मैं बहुत थक गया हूँ हजूर—बिठा लीजिए।" एक स्त्री बोली, "सरकार! मुझे बिठा लीजिए—मेरे पैरों में छाले पड़ गये हैं।" इसी प्रकार कई प्राणी अपने-अपने लिए प्रार्थना करने लगे। कार चलाने वाले सज्जन विषाद-पूर्ण स्वर में बोले-"अरे भई तेल खतम हो गया। अब हमको भी तुम्हारे साथ पैदल चलना पड़ेगा।"

"अच्छा!" कहकर वे लोग जो अपने-अपने लिए प्रार्थनाएँ कर रहे थे निराश होगये और पुनः चल दिए।

एक व्यक्ति बोल उठा—"मोटर की जान निकल गई।"

"कहाँ आकर धोखा दिया ससुरी ने।" एक दूसरे ने कहा।

"अजी यह भी कोई सवारी है। इस वक्त घोड़ा-गाड़ी होती तो काम देती। घोड़ा मरते-मरते भी ठिकाने तक तो पहुँचा ही देता।" तीसरा बोला।

कार के स्वामी कार से उतरे। उनके चेहरे पर बड़ी घबराहट थी। उन्होंने स्त्रियों से कहा—"उतरो अब पैदल चलना पड़ेगा।"

स्त्रियाँ अत्यन्त भयभीत थीं। दोनों उतरीं। साहब के कूले पर थर्मस फ्लास्क (पानी की बोतल) लटक रही थी। स्त्रियों से उन्होंने कहा—"और सब छोड़ो, खाली, टिफिन केरियर ले लो।"

कार के पीछे दो चमड़े के बक्स बँधे थे। कुछ सामान अन्दर भी रक्खा था। उनको सतृष्ण नेत्रों से देखते हुए दीर्घ निश्वास छोड़ कर वह व्यक्ति बोला—"छोड़ो इन सब को।"

"अजी बाबू जी इस लाश को तो दफ़ना देते। बेचारी ने न जाने आप की कितनी सेवा की होगी।"

यह सुनकर कुछ आदमी हंसने लगे। बाबू बिगड़ कर बोले—"हम तो मुसीबत में हैं और तुम लोगों को मज़ाक सूझा है।"

"तो हम लोग कौन सुख में हैं सरकार! लेकिन मुसीबत को भी हँसी-खुशी सहना चाहिये।"

"आप को ज्यादा रञ्ज न हो, इसलिए ऐसी बातें कर रहे हैं—बुरा न मानियेगा।"

बाबू साहब मुस्करा दिए, बोले "ठीक कहते हो भाई! हमें अपनी तो कुछ परवा नहीं इन औरतों और बच्चे की चिन्ता है।"

"खैर चिन्ता करने से कोई फायदा नहीं। अब तो भुगतना ही पड़ेगा। आइये चलें।"

बाबू साहब ने एक दृष्टि कार तथा असबाब पर डाली—ठन्डी साँस खींची और चल दिए। दोनों स्त्रियाँ भी रोती हुई चल दीं। चलते समय उन्होंने कार पर रक्खे हुए चार कम्बल उठा कर अपने कन्धों पर डाल लिए।

बाबू साहब चलते हुये बोले—"इस दुनिया में कुछ है नहीं। कल

तक क्या था आज क्या हो गया।" "यही बात है सरकार ! दुनिया में किसी चीज पर भरोसा करना गलती है। यहाँ अपना कुछ नहीं।" "क्यों भई, हम लोग सही सलामत हिन्दुस्तान पहुँच जांयगे ?" बाबू साहब ने पूछा।

"चले चलिए ! हिम्मत न हारिये। अगर जिन्दगी है तो पहुँच ही जाँयगे, नहीं तो एक दिन तो मरना ही है।"

"अरे भई मौत के डर से तो बर्मा छोड़ा—घर-बार माल-असबाब छोड़ा। परन्तु उससे छुटकारा न मिला। इससे तो वहीं बने रहते तो अच्छा था।" "जी जो नहीं मानता। उस समय यही समझ में आया कि भाग चलने में ही बचत है। लेकिन बाबू जी आपने काफी पेट्रोल साथ नहीं लिया यह गलती की।"

क्या बतावें भई। पेट्रोल के दो टीन जल्दी में रह गये। तकदीर की बात है। निकाल कर धरे लेकिन कार पर रखना भूल गये। जब दूर निकल आये तब याद आया अगर वे होते तो फिर क्या था। लेकिन तकदीर से कौन लड़ सकता है।"

"यही बात है। लाख उपाय करो, पर एक नहीं चलता। बताइये ! पेट्रोल ही रखना भूल गए। वाह रे भाग्य !"

"तुम बर्मा में क्या करते थे ?" बाबू साहब ने उस व्यक्ति से पूछा।

"नौकरी !"

बाबू साहब ने इस व्यक्ति को गौर से देखा। यह व्यक्ति गरीब मालूम होता था, परन्तु हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान था—वयस पेंतीस के लगभग होगी। बाबू साहब ने पूछा—"तुम्हारे बाल-बच्चे ?"

"बाल बच्चे तो हिन्दुस्तान में हैं। कौन बाल-बच्चे ! खाली घर-वाली है। अभी दो महीने हुए तब चिटठी मिली थी कि उसके लड़का हुआ है।"

"वह किसके पास है ?"

"अपने मायके में है।"

कुछ क्षण चुप रह कर बाबू साहब बोले—"तुम हमारे साथ रहो !

हम सकुशल हिन्दुस्तान पहुँच गये तो तुम्हें अपने यहाँ रख लेंगे।"

"मैं तो अब आप ही के साथ हूँ। हिन्दुस्तान पहुँचने पर देखा जायगा।"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"रामभजन लाल।"

(२)

चलते-चलते सन्ध्या हो गई। रामभजन लाल बोला—"अब कहीं ठहर जाना चाहिए—बाबू! रात बिता कर सवेरे चलेंगे।"

बाबू साहब बोले—"कहाँ ठहरेंगे।"

"यहीं किसी पेड़ के तले और ठिकाना ही कहाँ है।" रामभजन ने कहा।

अतएव एक वृक्ष के तले कम्बल बिछा कर ये चारों बैठ गये। राम भजन अपनी पीठ पर गठरी लादे था। उसे खोल कर उसने एक दरी निकाल कर अपने लिए बिछाई। टिफिन केरियर खोल कर चारों ने थोड़ा-थोड़ा भोजन किया। रामभजन को भी खाने को कहा गया, पर वह बोला—"आप अपने लिए रखिए—मेरे पास खाने को है। अभी आपको कई दिन काटने हैं।"

"क्या है?" बाबू साहब ने पूछा।

"ऐसे ही सटर-पटर है। भुने चावल हैं, और कुछ चने हैं। सब खा डाले, अब थोड़े रह गये हैं—दो तीन दिन भर को हैं। मुझे तो चलते आठदिन हो गये। आप मोटर में आये इससे जल्दी आ गये। हाँ पानी नहीं है—पानी थोड़ा आपको देना पड़ेगा।"

थर्मस बोतल से थोड़ा-थोड़ा पानी सबने पिया—थोड़ा, रामभजन को भी दिया। लड़का तो तुरन्त सो गया—स्त्रियाँ भी लेट गईं। बाबू साहब बैठे रहे। रामभजन बोला—"ऐसी मुसीबत कभी न उठाई होगी बाबू!"

"मुसीबत! हमें तो इस मुसीबत का कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं आया था।"

"आप तो अमीर आदमी हैं आपको मुसीबत से क्या सरोकार! मैं गरीब हूँ, बड़े-बड़े कठिन समय मैंने पार किए; पर ऐसा समय कभी नहीं पड़ा।"

"क्या बतावें इससे तो वहीं बने रहते तो अच्छा था, जो होता देखा जाता। मरते भी तो आराम से तो मरते। अब सोचता हूँ कि भाग कर आना गलत हुआ।"

"जैसी होनी होती है वैसी ही बुद्धि भी हो जाती है।"

"लेकिन मोटर होने के कारण समझे थे कि निकल जायँगे—सो मोटर ही दगा दे गई।'

"आपने ठीक सोचा था! तेल होता तो आप आराम से चले जाते।"

इसी प्रकार ये लोग बातें करते रहे। रात में कभी कुछ देर को सो जाते, कभी उठ कर बैठ जाते। इस प्रकार वह रात पार हुई। सवेरे उठकर फिरे चले। चलते-चलते प्यास लगती तो गला सींच लेते थे। बोतल का पानी समाप्त हो रहा था। बाबू साहब बोले—"पानी समाप्त हो जायगा तब क्या होगा ?"

रामभजन बोला—"जो भगवान की इच्छा होगी। रास्ते में कहीं पानी मिला तो ठीक है।"

"पानी तो इधर-उधर कहीं अवश्य होगा।"

"पर अपने को मालूम जो नहीं है।"

"यही तो मुश्किल है।"

दोपहर तक पानी समाप्त हो गया। दोपहर को ये लोग पुनः ठहर गये और दो घण्टे आराम करके फिर चले।

बाबू साहब बोले—"बिना पानी के तो बे-मौत मर जायँगे। खाना चाहे दो रोज न मिले।"

इस प्रकार बातें करते हुए जा रहे थे कि एक स्थान पर चार देहाती बर्मी दिखाई पड़े। ये लोग एक पानी के चश्मे पर पहरा दे रहे थे। चारों के पास तलवारें थीं। रामभजन बोला—"पानी तो है, परन्तु

ये साले पहरा लगाये हैं।"

इसी समय कुछ अन्य लोग जो इन लोगों के साथ-साथ चल रहे थे पानी लेने के लिए उधर गये।

बर्मियों ने तलवारों से उन्हें धमकाया और रुपये मांगने लगे। कुछ ने रुपये देकर पानी पिया। कुछ लोग लोटा लिए हुए थे उन्होंने लोटे भरने चाहे तो बर्मियों ने उसके लिए भी रुपये माँगे। बाबू साहब बोले—"भई पानी तो लेना चाहिए।"

रामभजन ने उन बर्मियों से बात की तो उन्होंने इन पाँचों को पानी पिला देने तथा बोतल और रामभजन का लोटा भर देने के सौ रुपये माँगे। बाबू साहब ने तुरन्त सौ रुपये के नोट निकाल कर दे दिए और पानी पीकर बोतल तथा लोटा भर लिया। कुछ लोग जिनके पास बर्मियों को देने के लिए काफी रुपये नहीं थे खड़े मुँह ताकते रहे।

एक व्यक्ति रामभजन से बोला—"भई एक लोटा हमारा भी भरवा देते।"

रामभजन बोला—"देखते नहीं हो तलवारें चमका रहे हैं। बिना रुपये लिए भला ये लोग देंगे?"

"हम तो प्यासों मर जायँगे।"

रामभजन ने दृष्टि डाली—कुल पन्द्रह बीस आदमी थे। इनमें से अनेकों के पास लाठियाँ थीं। रामभजन भी लाठी लिए हुए था। रामभजन अलग हट कर उन लोगों से बोला—"प्यासों में मरने तो यह अच्छा है कि पानी लेने के प्रयत्न में मारे जाओ। हम लोग पन्द्रह बीस हैं—ये चार! क्या हम लोग इन्हें मार के भगा नहीं सकते?"

"अरे भाई इनके पास तलवारें हैं।"

"बड़े कायर हो तुम लोग। अच्छा पहला वार मैं करूंगा—बोलो, है हिम्मत!"

सबने सलाह की। सलाह करके यह निश्चय किया कि प्यासों मरने से तो यह अच्छा है कि यहीं लड़-भिड़ कर मर जाँय! रामभजन से सबने अपना निर्णय कहा। रामभजन बोला—"तब ठीक है। बाबू

साहब आप स्त्रियों और लड़के को लेकर आगे बढ़ जाइये और हमारा इन्तजार कीजिए।"

बाबू साहब बोले—"चलो जी, तुम भी किस झगड़े में पड़ गए।"

"यह झगड़ा नहीं है बाबू!" जीवन-मरण का प्रश्न है। आप चलिए, मैं अभी आता हूं।" विवश होकर बाबू साहब अपने परिवार सहित आगे बढ़ गये। इधर रामभजन तथा अन्य लोग उन बर्मियों के पास पुनः पहुँचे। बर्मी समझे कि पानी खरीदने आते हैं। पास पहुँच कर रामभजन ने एक दम से एक बर्मी पर लाठी का वार किया। लाठी कड़ाक से उसके सर पर पड़ी और वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। अन्य लोगों ने शेष उन तीन पर लाठियाँ बरसा दीं। परन्तु वे तीनों जान लेकर भागे। कुछ ही मिनटों में मैदान साफ हो गया। रामभजन बोला—"अब पियो जितना पानी चाहो और अपने-अपने बरतन भर लो। जरा सी हिम्मत करने से काम बन गया।"

सबने खूब छक कर पानी पिया और जिसके पास जो पात्र था वह भर लिया। रामभजन बोला—"अब चलो तेज कदम—ऐसा न हो कि वे लोग मदद लेकर आ जांय" रामभजन ने उस बर्मी की, जो बेहोश पड़ा था, तलाशी ली। उसके पास बाबू साहब के नोट तथा अन्य रुपये निकले। वह सब रामभजन ने ले लिए। बाबू साहब के नोट रख कर अन्य रुपये उसने उन आदमियों को दे दिये।

बाबू साहब के पास पहुँच कर रामभजन बोला—"लीजिए अपने रुपये।"

बाबू साहब अचकचा कर बोले "ये कैसे मिले।"

"छीन लिए सालों से! और कैसे मिले।"

बाबू साहब बोले "शाबाश! इन्हें अपने ही पास रक्खो।"

रामभजन बोला, "आप रख लीजिए फिर मैं ले लूँगा। अब जरा तेज कदम चलिए।"

सब लोग लपक कर चले। लड़का बहुत थक गया था, चल नहीं पा रहा था, उसे रामभजन ने अपने कन्धे पर बिठा लिया अन्य लोग राम-

भजन से इतने प्रसन्न हुए कि वे भी इन्हीं के साथ हो गये। इस प्रकार अब पाँच आदमियों से बढ़ कर यह एक पूरा काफिला हो गया।

× × ×

चौथे दिन ये लोग भारत की सीमा पर पहुँचे। यहाँ सहायता का प्रबन्ध था। इतने दिनों में ही स्त्रियों की बुरी दशा हो गई। उनके पैरों में घाव हो गये। बाबू साहब भी आधे रह गये। लड़के की दशा अच्छी थी, क्योंकि उसे रामभजन तथा अन्य लोग बीच-बीच में अपने कन्धों पर लेकर चलते थे।

रामभजन बाबू साहब के साथ कलकत्ते तक आया। यहाँ आकर वह बोला "अब मैं अपने गाँव जाऊँगा बाबू!"

"अब कब और कहाँ मिलोगे?" बाबू साहब ने पूछा।

"मेरा पता लिख लीजिए। आप अपने ठिकाने से मुझे चिट्ठी डालियेगा फिर जैसा होगा देखा जयगा।"

बाबू साहब ने रामभजन का पता लिख लिया।

चलते समय बाबू साहब आँसू भर कर बोले—"रामभजन तुम्हारी बदौलत हम लोग जीवित आगये, अन्यथा वहीं खत्म हो जाते।"

"सब को भगवान ने पार लगाया बाबू, मेरी क्या शक्ति थी।"

बाबू साहब रामभजन को दो सौ रुपये देने लगे। परन्तु रामभजन बोला, मैंने मजदूरी नहीं की है बाबू! रुपये लेने से तो यह मजदूरी और नौकरी हो जायगी। मैंने तो जो किया मनुष्यता के नाते किया।

मुसीबत में दूसरों की सहायता और सेवा करना यही तो मनुष्यता है। है। मैं अपनी मनुष्यता को बेच नहीं सकता बाबू! आप अपने रुपये अपने पास रखिये।"

बाबू साहब ने बहुत कहा, बहुत समझाया, पर रामभजन ने एक न मानी। वह बोला, "फिर कभी मुझे आवश्यकता पड़ेगी तो आप से माँग लूँगा, इस समय तो एक पैसा न लूँगा।" यह कह कर रामभजन बाबू साहब से विदा हो गया। बाबू साहब सोचने लगे, "ऐसे ही आदमी को मनुष्य कहना चाहिए।"

स्वयंसेवक

(१)

अनोखेलाल अपने गाँव आया हुआ है। जाति का कुर्मी तथा वयस २४, २५ साल के लगभग है। दो वर्ष पूर्व नौकरी की तलाश में शहर गया हुआ था।

गाँव के परिचित लोग अनोखेलाल से मिलने आने लगे। "अरे भइया बहुत दिन में गाँव की सुधि ली—शहर में ऐसे रम गये।" "कभी होली-दिवाली भी न आये।" "शहर में जाकर फिर देहात में आने को जी नहीं होता।" इस प्रकार लोग कह रहे थे। अनोखेलाल सबको उत्तर देता था।

एक व्यक्ति ने पूछा—"वहाँ क्या काम करते हो भइया!"

"शहर में काम की क्या कमी है—आदमी मेहनती होना चाहिए।"

"तुम क्या काम करते हो?"

"मैं तो सेवा-समिति में काम करता हूँ।"

"सेवा-समिति में!"

"हाँ! वहाँ एक बहुत बड़ी सेवा-समिति है उसी में स्वयंसेवक हूँ।"

एक संस्कृतज्ञ पण्डित हाथ पर तमाखू फटफटाते हुए बोले—"वेतन-भोगी स्वयंसेवक?"

"हाँ वेतन मिलता है।"

पण्डित जी हँसे ! अनोखेलाल ने पूछा—

"आप हँसे क्यों ?"

"हँसा यह कि स्वयंसेवक और वेतन-भोगी !"

"तो क्या हुआ ?"

"ये दोनों तो विरुद्ध बातें हैं। स्वयंसेवक के अर्थ होते हैं—स्वेच्छा-पूर्वक सेवा करने वाला। अतः जो स्वेच्छा-पूर्वक सेवा करेगा वह वेतन कभी नहीं लेगा।"

"तो खायगा क्या ?

"जीविका के लिए अन्य कोई कार्य करे।"

"जब वह अन्य कार्य करेगा तब सेवा क्या खाक करेगा ?"

"कुछ भी हो स्वयंसेवक तो उसी को कहते हैं। वेतनभोगी तो नौकर होगया स्वयंसेवक नहीं रहा।"

"हम सेवा-समिति के नौकर हैं, परन्तु जनता की सेवा तो मुफ्त करते हैं—यही हमारी स्वयं-सेवा है।"

"हाँ—यों करते होंगे, परन्तु हम तो इसे स्वयं सेवा मान नहीं सकते।"

"आप न मानें, परन्तु जनता तो मानती है।"

"हाँ भइया ! शहर का मामला है, वहाँ नये नये कायदे कानून बनते हैं।"

"यह तो बड़ा पुराना कायदा है।"

पण्डित जी मुस्कराने लगे। बोले—"पुराना हो या नया—हम तो एक बात जानते हैं कि स्वयंसेवक उसे कहते हैं जो अपनी इच्छा से बिना किसी पुरस्कार अथवा वेतन के लालच के, सेवा करे !"

"ऐसा तो वही कर सकता है जिसके घर में खाने को हो।"

"जिसके घर में खाने को होगा, वह अन्य प्रकार से सेवा करेगा—स्वयं सेवक नहीं बनेगा—यदि बनेगा तो कुछ समय, कभी दे देगा—हर समय हाजिरी नहीं बजा सकता।"

पण्डित जी मुस्कराकर चुप हो गये।

(२)

पण्डित लालताप्रसाद उन लोगों में से थे जो अपने सामने किसी दूसरे को बुद्धिमान् बनने का अधिकार ही नहीं देते।

अनोखेलाल की चर्चा चलने पर आप मुँह बना कर कहते—"करते हैं नौकरी और बनते हैं स्वयंसेवक। और हमें समझाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे-एसे लौंडे हमने जाने कितने पढ़ाकर छोड़ दिये।"

"तो इसमें कौन सी शान है ?" एक ने पूछा।

"स्वयंसेवक कहने-सुनने में जरा अच्छा मालूम होता है।"

"बस।"

"और नहीं तो उसमें कौन लाट साहबी घुसी है।"

गाँव में अनोखेलाल 'स्वयं सेवक जी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। कुछ लोग तो साधारण तौर पर कहते थे और कुछ व्यंग से। पहले तो अनोखेलाल को व्यंग्यपूर्वक कहनेवालों पर ताव आता था परन्तु फिर यह सोच कर कि "बकने देओ अपना क्या नुकसान है" वह शांत हो गया।

अब अनोखेलाल की छुट्टी का केवल एक सप्ताह रह गया।

एक दिन वह घूमता हुआ पण्डित लालता प्रसाद की ओर चला गया। लालता प्रसाद ने पूछा—"कहो, कब जा रहे हो।"

"आज से पाँचवें दिन चला जाऊँगा।"

"हूँ ! एक दिन हम भी शहर आने वाले हैं !"

"तो आइयेगा। मेरे पास ही ठहरियेगा।"

पण्डित जी बड़े अभिमानपूर्वक बोले—"सो तो हमें ठहरने की दिक्कत नहीं है। सङ्गमपुर के जमींदार का लड़का वहाँ पढ़ता है—मकान लिये हुए है, वहाँ ठहर सकते हैं। राय साहब हमारे बड़े कृपालु हैं उनके पास ठहर सकते हैं।"

"तब भला आप एक गरीब स्वयंसेवक के यहाँ क्यों ठहरने लगे।"

"सो कोई बात नहीं। हमारे गाँव के हो—तुम्हारे यहाँ ठहरने में

हमें कोई संकोच थोड़े ही है। स्वयंसेवक हो ! तुम्हारा स्थान भी कोई न्यून नहीं है।"

"स्वयंसेवक क्या हैं, पेट पालते हैं किसी तरह ! स्वयंसेवक होना बड़ा कठिन है पण्डित जी !"

"कठिन क्या है ! उसमें काम ही क्या है। मेले-ठेले में पानी पिलाओ और भूले-भटकों को राह बताओ ! इसमें कौन कठिनता है।"

"इसमें तो कोई कठिनता नहीं। पर कठिन काम पड़ जाने पर उसे भी करना ही पड़ता है। स्वयंसेवक होकर उससे मुँह नहीं मोड़ सकते।"

"अरे भइया जान जोखिम आने पर सब मुँह मोड़ जाते हैं, वैसे कहने को कोई चाहे जो कहे।"

"नहीं पण्डित जी स्वयंसेवक कभी मुँह नहीं मोड़ेगा।"

"अभी लड़के हो ! मेरा सब देखा-सुना है। बड़े-बड़े स्वयंसेवकों को मैं देख चुका हूं।"

"कभी छोटों की बात भी मान लिया कीजिये।"

"क्या मान लूँ ! हमसे कोई अधिक बुद्धिमान अथवा अनुभवी हो तो मान लूँ। तुम्हारी बात कैसे मान लूँ ? अभी जुम्मा-जुम्मा आठ दिन की पैदायश।"

अनोखेलाल निश्वास छोड़ कर मन ही मन बोला—"भगवान इनका यह अभिमान चूर्ण करे।"

(२)

जिस दिन अनोखेलाल जाने वाला था उसके एक दिन पूर्व दोपहर को पण्डित लालताप्रसाद के मकान से मिले हुए मकान की एक लड़की हाथ में गिलास लिये हुए पण्डित जी के घर आयी और पण्डिताइन से गिलास में आग लेकर अपने घर की ओर चली।

घर की चौपाल तक पहुँचते-पहुँचते गिलास इतना गर्म हो गया कि लड़की ने उसे हाथ से छोड़ दिया। चौपाल में एक ओर खर-पतवार

जमा था—गिलास की आग जो गिरी तो उसमें से एक चिनगारी छिटक कर उस खर-पतवार में पहुँच गई। लड़की घर के भीतर चली गई और एक तवा लाकर उस पर, दो-चार कोयले जो पड़े थे, उठा ले गई। ज्येष्ठ का महीना था—लू जोर की चल रही थी। सहसा पतवार के ढेर में से एक ज्वाला उठी। वह चौपाल के छप्पर तक पहुँची—छप्पर भी जलने लगा। इधर गाँव में हल्ला हो गया—"आग लगी! आग लगी!" गाँव के अनेक आदमी दौड़े। कुए से पानी खींचने लगे, कुछ लोग निकटवर्ती गढ़इया से घड़े भर-भर के लाने लगे। जब तक आदमी दौड़ कर आवें तब तक पण्डित लालताप्रसाद का छप्पर भी जलने लगा। लोग पहले घर के आदमी तथा सामान निकालने में लगे थे। पण्डित लालताप्रसाद जल्दी-जल्दी अपना असबाब निकाल रहे थे। पत्नी और बच्चों को पहले ही निकाल कर बाहर खड़ा कर दिया था।

सहसा उनकी पत्नी बोली—"बक्स तो निकाल लाओ!"

पण्डित जी को याद आया कि बक्स नहीं निकाला गया। उसमें पण्डित जी की समस्त पूँजी गहने और नोटों के रूप में बन्द थी। पण्डित जी दौड़कर अन्दर घुस गये। पण्डित जी के अंदर जाते ही चौपाल का छप्पर जलता हुआ द्वार पर गिरा, अतः द्वार बन्द हो गया।

यह देखकर पण्डित जी की पत्नी ने हल्ला मचाया। कुछ लोग, जिनमें अनोखेलाल भी था, दौड़कर पण्डित जी के द्वार पर आये।

पत्नी रोकर बोली—"पण्डित जी अन्दर रह गये—उन्हें निकालो।"

लोगों ने बाँसों से जलते हुए छप्पर को द्वार पर से हटाया। छप्पर हटने पर देखा गया कि द्वार भी जल रहा है। यह देखकर एक बोला—"अब तो पण्डित का निकलना कठिन है। भीतर कोई जा ही नहीं सकता।"

अनोखेलाल दौड़कर घर के दूसरी ओर गया। उसने देखा कि दीवारों पर रक्खी हुई परछतियाँ भी जल रही हैं।

अनोखेलाल बोला—"चारों ओर आग है।"

गाँव वाले बोले—"अब पण्डित नहीं निकल सकते।"

इधर पण्डित जी की पत्नी तथा बच्चे चीत्कार कर रहे थे ! अनोखे लाल बोला—"मैं हूँ स्वयंसेवक और एक स्वयं-सेवक सेवा करने में अपने प्राणों का मोह नहीं करता। यह कह कर वह दौड़ कर अपने घर गया और एक कम्बल ले आया। कम्बल ओढ़ कर और अपना मुँह भली भाँति ढक कर वह थोड़ा पीछे हटा और फिर दौड़कर द्वार के निकट पहुंचा और वहाँ से छलाँग मार कर भीतर पहुँच गया। सारा घर धुएँ से भरा था। पण्डित घर के आँगन में बैठे—"हे भगवान रक्षा करो ! हे नारायण दया करो !" कह रहे थे—बक्स एक ओर पड़ा था। धुआँ और आग की गर्मी इतनी थी कि वहाँ ठहरना कठिन था। अनोखेलाल ने झटपट पण्डित जी को उठाकर पीठ पर लाद लिया और पुनः कम्बल ओढ़ कर द्वार की ओर लपका परन्तु अब द्वार अग्नि की लपटों के कारण सर्वथा अवरुद्ध हो चुका था। दो बार अनोखेलाल ने प्रयत्न किया परन्तु धुएँ और ज्वाला के कारण पीछे हट गया। बाहर बड़ा हल्ला मचने लगा। लोग कह रहे थे—"अब दोनों जल मरेंगे।"

अनोखेलाल ने तीसरा प्रयत्न जान खेल कर किया। उसने एक जोर की छलाँग भरी और द्वार को पार करके चबूतरे पर मुंह के बल आ गिरा। लोगों ने उसे दौड़ कर उठाया! उसके घुटने और कोहनी फूट गईं थीं। दोनों टाँगे नीचे से खुली थीं—उन पर फफोले पड़ गये थे।

पण्डित जी बिलकुल बेदाग थे। वह अनोखेलाल के पैरों पर गिर पड़े और बोले—"भाई तुम सच्चे स्वयं-सेवक हो। सेवा की भावना हुए बिना कोई इस प्रकार अपने प्राणों का मोह छोड़ कर दूसरे के प्राण नहीं बचा सकता।"

गाँव वालों ने नारा लगाया—"अनोखेलाल की जय ! स्वयं-सेवक की जय !"

मूँछ

(१)

ठाकुर विश्वनाथ सिंह उन लोगों में से थे जिनकी यह धारणा थी कि पुराने रीति-रिवाज आचार-विचार सब उत्तम और निर्दोष हैं और आधुनिक सभ्यता यदि पूर्णांश में नहीं तो अधिकांश दोषपूर्ण है। जिन बातों के वह बहुत ही भक्त थे उनमें कदाचित मूँछ ही प्रमुख थी। पुरुषों के लिए मूँछ को वह उतना ही आवश्यक समझते थे जितना कि बैल के लिए सींग।

उनकी अपनी मूँछें घनी, लम्बी तथा नोकीली थीं वह। मूँछों का लालन-पालन भी बड़ी तत्परता के साथ किया करते थे। मूँछों में तेल लगाना, कङ्घा करना उनका नित्य-कर्म था। जब फुर्सत के समय अकेले बैठते थे तो मूँछों पर हाथ फेरा करते थे और उन्हें मोड़ा करते थे। उनकी मूँछ-भक्ति देख कर गाँव के वे लोग जिनसे उनका हँसी-दिल्लगी का रिश्ता था, उन्हें छेड़ा करते थे। कोई उनकी मूँछ को बुलबुल का अड्डा कहता था, कोई कुत्ते की पूँछ से तुलना करता था। परन्तु इन बातों का ठाकुर विश्वनाथ सिंह पर कोई प्रभाव न पड़ता था। उनका खयाल था कि लोग ईर्षावश ऐसा कहते हैं।

विश्वनाथ सिंह जमींदार थे। जिस गाँव में वह रहते थे उसी गाँव के चार आने के वह जमींदार—शेष बारह आने में अन्य कई जमींदार

थे। सन्ध्या का समय था। विश्वनाथ सिंह के पास उनके कुछ मित्र तथा अन्य लोग बैठे हुए थे। ठाकुर साहब बात कर रहे थे और साथ ही मूँछों पर हाथ फेरने तथा मरोड़ने का कार्य भी करते जा रहे थे। सहसा उनका एक समवयस्क बोल उठा—"यह मूँछें काहे धर धर मरोड़ रहे हो—अब बूढ़े होने को आये, अब मूँछे मरोड़ने का समय नहीं रहा।"

"हुँह! बूढ़े होने आये तो क्या हुआ? हैं तो मरद ही जनाने तो नहीं हो गये।" ठाकुर ने अकड़ कर कहा।

"तो क्या जिनके मूँछे होती हैं वे ही मर्द होते हैं?" एक ने प्रश्न किया।

"और नहीं तो! बिना मूँछ का भी कोई मरद है। सुनो कवि क्या कहता है। कहता है—'बिना कुचन की कामिनी, बिना मूँछ का ज्वान ये तीनों फीके लगैं बिना सुपारी पान!' समझे भोंदूमल?"

"हाँ तो यह ज्वान के लिए कहा गया है। आप अब ज्वान कहाँ रहे।"

अरे ज्वान से यहाँ मरद से मतलब है—बुड्ढे और ज्वान से मतलब नहीं है। जरा कविताई समझा करो। मूँछ से बढ़ के मरद को और कोई शोभा नहीं है। पुराने जमाने में मूँछ का बाल गिरवी रक्खा जाता था। हमारे बाबा पर एक दफा बड़ी मुसीबत पड़ी। एक महाजन से रुपया माँगा तो उसने कहा—'कोई चीज गिरौं धर दीजिए।' उस बखत हमारे बाबा की ऐसी हालत थी कि घर में ऐसी कोई चीज नहीं थी जिसे गिरौं धरते। जेवर के नाम हमारी दादी के पास चाँदी का छल्ला भी मौजूद नहीं था। जब महाजन को यह बात मालूम हुई तो वह बाबा से बोला—'अच्छा अपनी मूँछ का बाल गिरौं धर दीजिए।' यह सुन कर बाबा आग हो गए और उसे खरी खोटी सुना कर चले आये। सो पहिले मूँछ की ऐसी कदर थी। अब आजकल कहो तो पूरी मूँछ मुड़ा के धर दें-और दो चार रुपये में। और अब मूँछें हैं कहाँ। हमारी लड़काई में मूँछे होती थीं—एक से एक आला—तसबीर की तरह देखा

करो ! जब से मूँछें मुड़ाई जाने लगीं तब से देश जनाना हो गया—मरदानगी जाती रही।"

उनकी ये बातें सुनकर कुछ लोग हँसते थे, कुछ प्रभावित होते थे।

(२)

उनका एक पुत्र थर्ड इयर में पढ़ता था। शहर में कालेज के बोर्डिंग हाउस में रहता था—वयस बीस वर्ष के लगभग थी। उसकी उगती हुई मूँछों को देख देख कर ठाकुर साहब को बड़ी प्रसन्नता होती थी। वह उस दिन का स्वप्न देखा करते थे जबकि उनके पुत्र जगन्नाथ सिंह की मूँछें भी उन्हीं की जैसी होंगी।

जगन्नाथ सिंह छुट्टियों में घर आया करता था। एक बार जब वह घर आया तो ठाकुर विश्वनाथ सिंह को यह देख कर फिट आ गया कि जगन्नाथ के ओठों पर उस्तरा फिरा हुआ है। पहले तो उन्हें अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हुआ, परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर जब उन्हें निश्चय हो गया कि मूँछें मुड़ाई गई हैं तो वह आपे के बाहर होगये। वह बोले—"क्यों रे जगन्नाथ मूँछें मुड़ा डालीं क्या ?"

जगन्नाथ बोला—"मुड़ाई नहीं हैं, अपने हाथ से मूँड़ी हैं।" इतना सुनते ही ठाकुर साहब का हार्टफेल होने लगा। अपना चित्त सँभालने का प्रयत्न करते हुए उन्होंने कहा—"मेरे जीते जो ! अरे नालायक मुझे जिन्दा ही मारे डाल रहा है। तू इतना भी नहीं जानता कि जब तक माँ-बाप जिन्दा बैठे रहते हैं तब तक मूछें नहीं मुँड़ाई जातीं ? यही तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई है ?"

जगन्नाथ बोला—"ये सब पुराने विचार हैं चाचा ! आजकल की सभ्यता में मूँछें रखना व्यर्थ समझा जाता है।"

"यह नई सभ्यता तो मर्दों को जनाना बनाकर छोड़ेगी और तो कुछ रहा नहीं। एक मूँछों की लाज बाकी थी सो उसे भी तुम्हारे जैसे कुलकलंक खतम किये दे रहे हैं !"

जगन्नाथ ने पिता को समझाने का प्रयत्न किया पर उसके समझाने

ने आग पर घी का काम किया—"और देखो, यह लौंडा उलटे मुझी को उल्लू बना रहा है।"

ठाकुर साहब ने इस घटना को इतना महत्व दिया कि उस दिन भोजन नहीं किया। जिन लोगों ने सुना और समझाने आये कि—"आजकल तो सभी मूँछें मुँड़ाने लगे हैं, लड़के ने मुँड़ा डालीं तो कौन बड़ा अपराध किया।" उनको भी ठाकुर ने फटकारा। बोले—"बाप-माँ जिन्दा और लड़का मूँछें मुँड़ाये घूमे—ऐसा अन्धेर भी कभी सुना था। अरे मरदानगी और शोभा गई चूल्हे-भाड़ में पर इस बात का तो विचार किया होता कि मेरे माँ-बाप जिन्दा बैठे हैं।"

लोगों ने जगन्नाथ से पूछाकि—"मूँछें क्यों मूँड़ने लगा? अपने बाप का स्वभाव जान-बूझ कर ऐसा ग़लती का काम किया।"

जगन्नाथ बोला—"कालेज के हमारे साथी चिढ़ाते थे। एक दिन बाजार गये तो हमारे एक साथी ने उस्तरा लिया—छोटे से खूबसूरत बक्स में चमचमाता हुआ देख कर जी ललचा उठा। मैंने भी एक सेट ले लिया। जब खरीद लिया तो उसका व्यवहार भी आवश्यक हो गया।"

एक वृद्ध सज्जन बोले—"यही तो बड़ी बुरी बात हुई है। उस्तरे दुकान दुकान बिकने लगे—इससे और खराबी हो गई।"

"उस्तरे तो पहले भी बिकते थे—आकाश से थोड़े ही बरसते थे।" एक व्यक्ति बोला।

"गधे हो! पहले ऐसे उस्तरे थोड़े ही बिकते थे कि अपने हाथ से बना लो? अब तो विलायतवालों ने ऐसे उस्तरे चला दिये कि एक बच्चा भी अपने आप बना ले। यही सारी खराबी की जड़ हो गई।"

ठाकुर विश्वनाथ ने ऐसा हो-हल्ला मचाया कि जगन्नाथसिंह तोबा बोल गया और उसने निश्चय कर लिया कि पिता के जीवन-काल में मूँछें कभी नहीं मूँड़ेगा।

(३)

ठाकुर विश्वनाथसिंह और उनके गाँव के अन्य जमींदारों में चलती

ही रहती थी। एक दिन उनके एक काश्तकार ने आकर शिकायत की—"ठाकुर हमारे खेत की मेंड के पास एक शीशम का पेड़ है उसे बलभद्र-सिंह कटा रहे हैं।"

"क्यों?" ठाकुर ने पूछा।

"जबरदस्ती और क्यों। जगह-जमीन आपकी है—वह कटानेवाले कौन हैं!"

"ठीक बात है। क्या अभी कटा रहे हैं।"

"हाँ उनके आदमी कुल्हाड़ी लेकर आगये हैं।"

यह सुनकर ठाकुर विश्वनाथसिंह अपने कुछ आदमियों को लेकर चले। शीशम के पेड़ के पास पहुँचने पर उन्होंने देखा कि पेड़ पर कुल्हाड़ी चल रही है—पास ही जमींदार हनुमान सिंह खड़े हैं। यह देख कर विश्वनाथ बोले—"बस खबरदार! अब कुल्हाड़ी न चले, नहीं अच्छा न होगा!"

"क्यों न चले कुल्हाड़ी?" हनुमानसिंह ने पूछा।

"पेड़ हमारी जगह में है।"

"कुछ घास तो नहीं खा गये हो। यह तुम्हारी जगह है? तुम्हारी जगह वहाँ खतम हो जाती है।"

इस पर कहा-सुनी होने लगी। हनुमानसिंह बोले—"तो खैर आप की जगह सही—आपको जो करना हो सो कर लीजिए। हम तो पेड़ कटवायँगे।"

विश्वनाथसिंह बोले—"पेड़ कटवाना दिल्लगी नहीं है—लहासें गिर जाँयगी।"

"अरे जाओ ठाकुर! बहुत बलफो नहीं, नहीं तो ये गिलहरी की पूँछ जैसी मूँछें उखड़वा ली जाँयगी। मेरा नाम है हनुमानसिंह!"

इतना सुनते ही विश्वनाथसिंह आग हो गया, अपने आदमियों से बोले—"मारो सालों को।"

उनके साथ के आदमियों में से एक प्रमुख व्यक्ति बोला—"ठाकुर पहले यह निश्चय कर लेओ कि जगह तुम्हारी है। ऐसे फौजदारी करने

से कोई नतीजा नहीं।"

"तब तक पेड़ तो कट जायगा।" विश्वनाथ ने कहा।

"कट जाने दो ! अदालत से पेड़ के दाम मिलेंगे—हर्जाना मिलेगा। अदालत की लडाई लड़ो-फौजदारी करने में मामला उलटा हो जायगा।"

विश्वनाथसिंह चुपचाप वहाँ से चले आये।

दूसरे दिन लोगों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ठाकुर विश्वनाथ ने मूँछें मुँड़वा डालीं। लोगों ने कारण पूछा तो ठाकुर बोले—"अब मूँछें रखने का धरम नहीं रहा। हमारे मुँह पर हमारी मूँछे उखाड़वाने की बात कही गई और हम कुछ न कर सके—तब मूँछें रखने से क्या फायदा।"

"बिना सरदार की फौज कभी लड़ी है। हमारी देह में बल होता और हम लाठी चलाने लगते तो साथ वाले भी भिड़ जाते। जब हमीं कुछ नहीं कर सके तब साथ वाले क्या करते।"

"जगन्नाथ ने मूँछें मूड़ी थी तब तो उस बेचारे पर बहुत बिगड़े थे।"

"अब उससे भी कह देंगे कि मूँछों का जमाना नहीं रहा।" यह कह कर ठाकुर ने मूँछों पर हाथ फेरा।

"अब वहाँ क्या धरा है जो हाथ फेरते हो।"

"आदत पड़ी हुई है—वह तो छूटते छूटते ही छूटेगी।"

यह कहते हुए ठाकुर की आँखों में आँसू छलछला आये।

विजय-दशमी

(१)

पं० माताप्रसाद अनाज के एक बड़े व्यापारी हैं। लखपती कहलाते हैं। ठाठ भी लखपतियों जैसे हैं। आपका एक राम-मन्दिर भी है और उसकी गिनती नगर के अच्छे मन्दिरों में है।

माताप्रसाद सबेरे दो घण्टे और सन्ध्या समय लगभग दो घण्टे इस मन्दिर में पूजन-पाठ तथा रामभजन किया करते हैं।

लोगों का कथन है कि पण्डित जी बड़े उदार, सच्चे तथा सौम्य आदमी हैं। जिस समय अनाज का देशव्यापी संकट चल रहा था और ब्लेक-मार्केट करने वाले अनाज के व्यापारी जनता को दाने-दाने के लिए तरसा रहे थे, उस समय केवल पण्डित जी ने अपने बाज़ार से विद्रोह करके जनता को यथासम्भव अन्न दिया था। उनके राम-मन्दिर में नित्य पन्द्रह आदमियों को पका हुआ भोजन आमान्न मिलता है। इसके अतिरिक्त पण्डित जी अन्य लोकोपारी कार्यों के लिए भी यथाशक्ति दान देते रहते हैं।

पण्डित जी का परिवार छोटा है। कुल पाँच व्यक्ति उनके परिवार में हैं। वह स्वयं, भ्राता, पत्नी, एक कन्या तथा एक पुत्र।

पण्डित जी का नियम था कि पाँच बजे दुकान से उठ आते थे। घर आकर शौच-स्थान करते थे। तत्पश्चात् मन्दिर में पहुँच जाते थे।

नौ बजे तक मन्दिर में रहते, तत्पश्चात् घर आकर भोजन करते थे और फिर ग्यारह-साढ़े ग्यारह तक अपनी बैठक में बैठकर आगत मित्रों तथा परिचितों से वार्त्तालाप करते थे अथवा अकेले होने पर कोई धार्मिक ग्रन्थ पढ़ा करते थे !

पौनेदस का समय था। पण्डित जी भोजन करके अपनी बैठक में आकर बैठे ही थे कि उसी समय उनके दो मित्र आ गये।

पण्डित जी ने मुस्कराकर उनका स्वागत किया।

"कहो भई रामजीदास, सब कुशल ?"

"हाँ सब आपकी दया है।"

"और तुम बम्बई से कब लौटे रामसेवक ?"

"मैं कल आया हूँ।"

"क्या हाल-चाल है।"

"हाल-चाल सब ठीक है।"

"रामलीला हो रही है ?"

"हाँ ! मैं तो अभी किसी दिन गया नहीं, लड़के बच्चे जाते हैं।"

"हम लोग क्या जायँ ! वही सब पुरानी बातें, कहीं कोई नवीनता नहीं।" रामजीदास ने कहा।

"नवीनता हो कहाँ से। प्राचीन ढंग से करने में भी वाधा है।"

"वाधा कैसी ?"

"यही, हिन्दू-मुस्लिम दंगे की।"

"दंगा-वंगा कुछ नहीं होगा। पुलिस का काफी प्रबन्ध है।"

पण्डित जी मुस्करा दिये बोले—"इतनी नवीनता थोड़ी है ?"

"नवीनता इसमें क्या है ?"

"प्रति वर्ष पुलिस का प्रबन्ध अधिक होता जाता है यही नवीनता है।"

दोनों व्यक्ति हँस पड़े। रामसेवक ने कहा—"इसमें कौन सी नवीनता है ?"

"इसमें बहुत बड़ी नवीनता है। सरकार को लोगों के धार्मिक कार्य

सकुशल सम्पन्न करा देने का कितना ख़याल है। स्वयं अपना प्रबन्ध करके आपके सब कार्य करा देती है।"

"यह क्या बात हुई। प्रबन्ध करना तो सरकार का कर्त्तव्य है।"

"निस्सन्देह! जब आप लोग अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकते तब सरकार को करनी पड़ती है।"

"हाँ यह बात तो ठीक है। यह अच्छा भी है। सरकारी प्रबन्ध में अपना सब कार्य निश्चिन्तापूर्वक हो जाता है।

"इसमें क्या सन्देह है। चिन्ता को हम लोग पास भी नहीं फटकने देना चाहते। इसी कारण चिन्ता करने का काम सरकार को करना पड़ता है।"

"शासक का यही कर्त्तव्य है।"

"बिलकुल! और शासित का यह कर्त्तव्य है कि वह सब चिन्ताओं का भार शासक पर छोड़ कर सुख की नींद सोवे।"

"और क्या! जनता को चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है।"

"ठीक बात है। ऐसी दशा में स्वराज्य माँगना बिलकुल व्यर्थ है; क्योंकि स्वराज्य मिल जाने पर चिन्ता करने का भार भी अपने ही ऊपर आ पड़ेगा—उस दशा में सुख की नींद कैसे सोइयेगा?"

"यह तो बनी बनाई बात है। क्या आप समझते हैं कि यदि भारत स्वतन्त्र होता तो इस युद्ध की आग से बच सकता था?"

"कभी नहीं। इस युद्ध में भारत तो बेदाग ही रहा।"

"बिलकुल! लाखों भारतीय सैनिक कट गये, बंगाल में लाखों आदमी अन्नभाव से मर गये, लाखों को कपड़े नहीं मिले, पेट भर भोजन नहीं मिला, भारत का करोड़ों रुपया युद्ध की भेंट हो गया। ये सब आराम स्वराज्य में कहाँ नसीब होते।"

"ये आराम नहीं कष्ट की बातें थी—यह मानना पड़ेगा, परन्तु जो देश युद्ध में रत थे उनकी दशा तो यहाँ से भी अधिक ख़राब है। उनकी तुलना में तो भारत का कष्ट बहुत कम है। जापान और जर्मनी की दशा देखिये, चीन की हालत पर विचार कीजिए।"

"हाँ ! ठीक कहते हो ।" पण्डित जी ने मुस्कराकर कहा ।"

इसके पश्चात् बात का प्रसंग बदल गया ।

(२)

अष्टमी का दिन था । चारों ओर दुर्गापूजा की धूम थी ! स्त्री-पुरुष देवी-मन्दिर की ओर दौड़े चले जा रहे थे ।

पण्डित माता प्रसाद अपने मन्दिर में नित्यानुसार उपस्थित थे मन्दिर का पुजारी बोला—"आप देवी के दर्शन करने न जायँगे—कर आइये दुर्गाष्टमी है ।"

"क्या बतावें पुजारी जी, दर्शन करते-करते ये आँखें बेकार हुई जा रही हैं, परन्तु कोई लाभ तो होता नहीं ।"

"देव-दर्शन स्वयं सबसे बड़ा लाभ है ।"

"पारलौकिक हो तो हो, लौकिक लाभ तो कुछ भी नहीं है ।"

"लौकिक लाभ होता ही है श्रद्धा होनी चाहिए ।"

"श्रद्धा ! इस देश में श्रद्धालुओं की कमी है । झुण्ड के झुण्ड स्त्री-पुरुष जो देवी-मन्दिर की ओर भागे चले जा रहे हैं, ये क्या श्रद्धा का विज्ञापन नहीं करते ।"

"निस्सन्देह ! करते हैं । इसी से तो पता चलता है कि हमारे देश में अब भी इतनी श्रद्धा है ।"

"परन्तु उसका फल क्या ? महिषासुरमर्दिनी जगज्जननी महा-माया आज तक अपने भक्तों को गुलामी की जंजीरों से मुक्त न करा सकी ।"

"अवश्य करायगी, समय आने दीजिए ।"

"यदि सर्वशक्तिमान देवताओं को भी समय की प्रतीक्षा है तब तो यह श्रद्धा-वृद्धा सब व्यर्थ है ।"

"एक बात और भी तो है पण्डित जी, हम लोग उन्हें हृदय से पुकारते कब हैं ।"

"तब तो यह श्रद्धा ढोंग है, दिखावा मनोरंजन है ।"

"नहीं, सब तो ऐसे नहीं हैं। ऐसे लोग भी हैं जो सच्चे भक्त हैं।"

"तब वे केवल अपने व्यक्तित्व अथवा अपने सपरिवार के लिए देवी की कृपा चाहते हैं, यह तो स्वार्थ कहलायगा।"

"आप का तात्पर्य क्या है पण्डित जी!"

"मेरा तात्पर्य यह है कि मुझे यह व्यर्थ की श्रद्धा-भक्ति देख कर क्लेश होता है। हम अपने धर्म की लाश को हृदय से लगाये हुए हैं, हमारा धर्म निष्प्राण हो चुका है।"

"आप ऐसा कहते हैं! राम के अनन्य भक्त होकर!"

"मेरी भक्ति भी अन्यों की भाँति ही है।"

"आप ऐसा कहें मैं तो ऐसा नहीं समझता।"

"मैं तो समझता हूँ।"

"तो आखिर आप चाहते क्या हैं?"

"मैं चाहता हूँ कि हमारे धर्म का कायाकल्प हो उसमें फिर से नव स्फूर्ति आवे।"

"वह कैसे आवेगी?"

"धर्म को नया जामा पहनने से! वर्तमान समय में हमारा धर्म जो रूप धारण किये हुए है वह हमारे लिए व्यर्थ है। हम उससे न अपना कुछ भला कर सकते हैं न दूसरों का। हम मानते तो हैं विजय दशमी और पुलीस के पहरे में अपने जुलूस निकालते हैं। हमारे राम-कृष्ण भी बिना पुलीस की सहायता के निरापद नहीं रह सकते। यह है हमारा धर्म! यह विजय दशमी है? यह विजय दशमी नहीं, विजय दशमी का उपहास है, उसका मखौल उड़ाना है। जरा गड़बड़ी होते ही हम अपने पूज्य देवताओं के प्रतीकों को छोड़ कर बिलों में घुस जाते हैं। थोड़ा सा ही विरोध होने पर हमें अपना धार्मिक कार्य ही बन्द कर देना पड़ता है। ये विजय के लक्षण हैं या पराजय के। बाँस और कागज के रावण पर विजय पाने के लिए हम इतना बड़ा आयोजन करते हैं, उसे जलाकर हम समझते हैं कि हमने विजय प्राप्त कर ली। परन्तु आप

की वास्तविकता यह है कि बिना सरकारी सहायता के आप उस कागज के रावण पर भी विजय नहीं प्राप्त कर सकते।"

पुजारी जी सिर झुका कर बोले "बात तो आप ठीक कहते हैं, परन्तु किया क्या जाय ? यदि कुछ न किया जाय तब भी नहीं बनता कुछ करते रहने से हमारे धार्मिक उत्सवों का अस्तित्व तो बना हुआ है।"

"हाँ केवल इतना ही लाभ है। इस बहाने लोगों का मनोरंजन हो जाता है।"

(३)

विजय दशमी का दिन आ पहुँचा। घर-घर में उत्साह तथा आनन्द हिलोरें मार रहा था। परन्तु पण्डित माताप्रसाद आज कुछ निरुत्साह तथा उदासीन दिखाई पड़ रहे थे। उनका घर भर प्रसन्न तथा उत्साहित था परन्तु वह स्वयं खिन्न-चित्त से थे ! इतना होते हुए भी वह सवेरे से ही मन्दिर में उपस्थित थे। आज भोजनार्थियों की भीड़ अधिक थी और पण्डित जी नियमित संख्या की उपेक्षा करके सबको भोजन दे रहे थे।

बारह बजे तक वह यह कार्य करके पैदल ही घर की ओर आरहे थे कि राह में उनके एक परिचित मिल गये। पण्डित जी से उन्होंने पूछा—"आज अब मन्दिर से लौटे ?"

"हाँ ! जरा देर होगई। तुम किधर चले।"

"क्या बताऊँ, मैं तो थोड़े झंझट में हूं।"

"झंझट कैसा ?"

"मेरे पड़ोस में एक गरीब ब्राह्मण रहते थे। दो मास हुए उनका देहान्त हो गया है। उनका परिवार बड़े कष्ट में है—पेट भर भोजन का भी ठिकाना नहीं है। आज विजय-दशमी है। घर-घर में उत्साह और आनन्द—विधवा बेचारी बैठी रो रही है। उसके दो बच्चे सवेरे से ही रोना-धोना मचाये हैं—कहते हैं कपड़े लाओ, मिठाई लाओ, खिलौने लाओ। वह विधवा बेचारी ये सब कहाँ से लावे।"

"तुम्हारे ऊपर क्या झंझट है।"

"इसी सोच में हूँ कि उनकी कुछ सहायता करूँ। मिठाई तो मैं ला दूँगा, परन्तु अन्य चीजें मेरे बस की नहीं है। विधवा का दुःख देखा नहीं जाता। मैं गरीब आदमी उनकी क्या सहायता करूँ—समझ में नहीं आता।"

"तुमसे नहीं देखा जाता तो मुझे ले चलो, मैं देखूँगा।"

"आपने अभी भोजन-वोजन नहीं किया है।"

"इसकी चिन्ता मत करो।"

"तो चलो। अच्छे मिल गये।"

दोनों चल कर विधवा ब्राह्मणी के घर पहुँचे। एक गन्दे अंधेरे तथा तङ्ग मकान को एक कोठरी में विधवा का निवास था। विधवा केशरीर पर केवल एक फटी धोती और बच्चों के शरीर पर मैला तथा फटा कुर्ता था—लड़के का अधोभाग नंगा था—उसकी आयु सात वर्ष की थी और कन्या केवल एक चिथड़ा लपेटे हुए थी। दोनों बच्चे मौन थे परन्तु उनके गालों पर आँसुओं की लकीरें स्पष्ट बता रही थीं कि उन्होंने अभी कुछ क्षण पूर्व ही रोना बन्द कर दिया है।

माताप्रसाद ने देख कर नेत्र बंद कर लिये और एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोले—"हे राम तुम कहाँ हो?"

इसके पश्चात् अपने साथी से बोले—"चलो!"

"इनके लिए क्या सोचा।"

"चलो! तुम इस झंझट में न पड़ो।"

दोनों चले। जहाँ भेंट हुई थी वहाँ पहुँचा कर पण्डित जी बोले—"अच्छा तो चलता हूँ।"

परिचित महोदय ने खिन्न होकर कहा—"अच्छा! नमस्कार।"

"नमस्कार'! कह कर पण्डित जी चल दिये। परिचित महोदय ने मन ही मन कहा "वाह! अच्छे मिले—देखकर चले आये कुछ दिया भी नहीं। बड़े धार्मिक की दुम बनते हैं। हमसे कहते हैं, तुम इस झंझट में

न पड़ो । वाह भई वाह ! जब बड़ों की यह दशा है तब हम गरीब किस गिनती हैं ।"

दो घंटे पश्चात् जब वह महाशय आठ आने की मिठाई लेकर विधवा के यहाँ पहुँचे तो उन्होंने देखा कि विधवा बच्चों को नहला रही है, साबुन लगाकर।

वह बोले—"लो यह मिठाई तो मैं ले आया बच्चों के लिए परन्तु—।"

विधवा प्रसन्नमुख होकर बोली—"मिठाई तो बहुत आगई !"

"कहाँ से आगई ?"

"न जाने कोई दे गया है। और भी बहुत कुछ दे गया है ।"

"क्या दे गया है।"

"कोठरी में धरा है देख लो ।"

वह व्यक्ति कोठरी में गया तो उसने देखा कि एक थाल मिठाई का भरा रक्खा है। एक थाल में काफी आटा, दाल, चावल, घी इत्यादि कोई दस आदमियों का सामान। एक थाल में स्त्री के लिये दो धुली धोतियाँ, बच्चों के धुले कपड़े, लड़की के लिए धोती सलूका ! लड़के के लिए धोती, कुर्ता, टोपी ! और पचीस रुपये नक़द !

"ये रुपये भी हैं" उस व्यक्ति ने पूछा।

"हाँ ! कह गया है कि बच्चों के लिए जूते और खिलौनों के लिए !"

"परन्तु दे कौन गया ?"

"मैंने बहुत पूछा पर उसने बताया नहीं, रखके चला गया।"

वह व्यक्ति एक दम वहाँ से भागा और सीधा माताप्रसाद के पास पहुँचा। पण्डित जी से वह बोला—"पण्डित जी क्या वह सब सामान आपने भेजा है ।"

"राम जी ने भेजा होगा, मुझ में क्या शक्ति है ।"

वह व्यक्ति कुछ क्षण हतबुद्धि सा खड़ा रहा। पण्डित जी मुस्करा कर बोले—"बैठो !"

"नहीं अब जाऊँगा। आपने इतना किया है तो मैं उन्हें जूते तो पहना लाऊँ।"

"अच्छी बात है! हां एक बात और है, जब तक विधवा के निर्वाह का कोई अन्य द्वार उत्पन्न न हो तब तक मैं उसे बीस रुपये मासिक देता रहूँगा।"

"आप धन्य हैं पण्डित जी! एक दुखिया के दुःख का नाश करके सच्ची विजय दशमी आपने ही मनाई। संध्या समय मेले में तो जाइयेगा।"

"जी नहीं! मेरी ऐसे मेलों में तनिक भी श्रद्धा नहीं है वरन् देखकर उलटा कष्ट होता है।"